प्रवर्त्तक कान्तिविजय जैन इतिहासमाला तृतीय पुष्प।

॥ अर्हम् ॥

शत्रुंजयतीर्थोद्धारप्रबंध।

(उपोद्घात और ऐतिहासिक सारभाग सहित।)

संपादक-

मुनि जिनविजय।

प्रकाशक-

श्री जैन आत्मानन्द सभा

भावनगर।

(प्रथमावृत्ति-५०० प्रतिः)

वीर संवत् २४४३.
विक्रमार्क १९७३.

मूल्य—
दश आने.

धन्यवाद ।

प्रवर्तक श्रीमान कान्तिविजयजी महाराज के विद्वान शिष्य
मुनिमहाराज श्रीचतुरविजयजी के सदुपदेश से वडोदा
निवासी धर्मनिष्ठ उदारचित्त श्रीमन्त सेठ लीला-
भाई रायचंद ने अपने पुत्र के लग्नोत्सव
निमित्त इस पुस्तक के छपवाने
में द्रव्य विषयक उदार मदद
दी है। इस लिये
इन्हें धन्यवाद
दिया जाता
है।

श्रीजैन आत्मानंद-सभा।

श्रीमान् सेठ लीलाभाई रायचंद जौंहरी।

(बडौदा.)
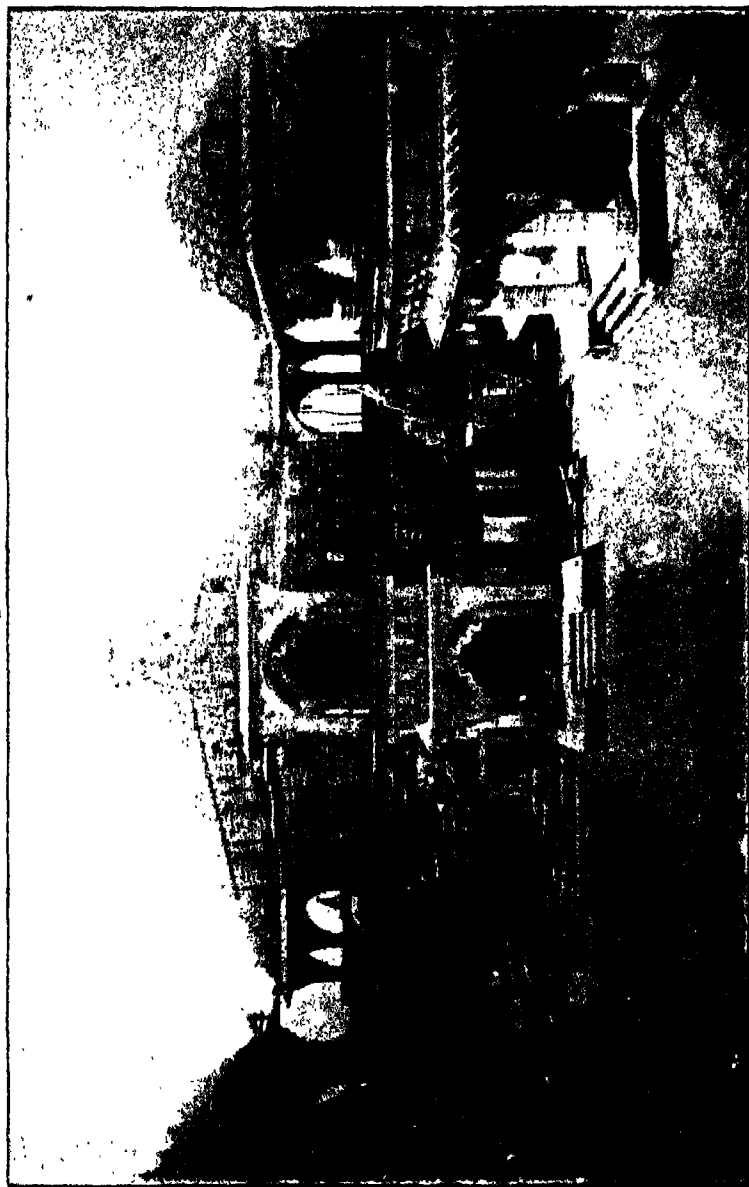
शत्रुंजयपर्वत का मुख्यमन्दिर ।

उपोद्घात।

शत्रुंजय पर्वत का परिचय।
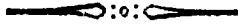
जगत् के प्रायः सभी प्राचीन धर्मों में किसी न किसी स्थान विशेष को पूज्य, प्रतिष्ठित और पवित्र माने जाने के उदाहरण सब के दृष्टिगोचर हो रहे हैं। क्या मूर्तिपूजा मानने वाले और क्या उस का निषेध करने वाले; क्या ईश्वरवादी और क्या अनीश्वरवादी; सभी इस बात में एक से दिखाई देते हैं। हिन्दु हिमालयादि तीर्थों को, मुसल्मान मक्का तथा मदीना को, क्रिश्चियन जेरुसलम को और बौद्ध गया और बोधिवृक्ष वगैरह स्थानों को हजारों वर्षों से पूजनीय और पवित्र मानते आ रहे हैं। इन धर्मों के सभी श्रद्धालु मनुष्य, जीन्दगी में एक बार अपने अपने इन पावन स्थानों में जाया जाय तो स्वजन्म को सफल हुआ मानने की मानता रखते हैं। जैनधर्म में भी ऐसे कितने ही स्थल पूजनीय और स्पर्शनीय माने गये हैं। शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगगिरि और समेतशिखर आदि स्थानों की इन्हीं में गिनती है। इन में भी शत्रुंजय नामक पर्वत सब से अधिक श्रेष्ठ, सब से अधिक पवित्र और सब से अधिक पूज्य गिना जाता है।

यह पर्वत, बम्बई ईलाखे के काठियावाड प्रदेश के गोहेलवाड प्रांत में, पालीताणा नामक एक छोटीसी देशी रियासत की राजधानी के पास है। इस का स्थान, भूगोल में, २१ अंश, ३१ कला, १० विकला उत्तर अक्षांश और ७१ अंश, ५३ कला, २० विकला पूर्व देशान्तर, हैं। पालीताणा एक कस्बा है जिस में सन् १८९१ * की मनुष्य गणना के समय १०४४२ मनुष्य बसते थे; जिन में ६५८६ हिन्दू, १९५७ जैन १८७८ मुसलमान २० कृस्तान और १ पारसी था। कस्बे में राजकीय कुछ मकानों को छोड कर शेष सब जितने बडे बडे मकान हैं वे सब जैनसमाज के हैं। शहर में सब मिला कर कोई ४० के लग भग तो यात्रीयों के ठहरने की धर्मशालायें हैं जिनमें लाखो यात्री आनंद पूर्वक ठहर सकते हैं। इन धर्मशालाओं में से कितनी ही तो लाखों रुपये की लागत की है और देखने में बडे बडे राजमहालयों सरीखी लगतीं हैं। विद्यालय, पुस्तकालय, औषधालय, आश्रम, उपाश्रय और मंदिर आदि और भी अनेक जैन संस्थायें शहर में बनी हुई है जिन के कारण यह छोटासा स्थान भी एक रमणीय शहर लगता है। यात्रियों के सतत आवागमन के कारण सदा ही एक मेला सा बना रहता है। जैनसमाज अपने धार्मिक कार्यों में कितना धन व्यय करती है यह जिसे जानना हों उसे एक सप्ताह इस शहर में बिताना चाहिए जिससे जैन लोकों की उदारता का ठीक ठीक खयाल आ जायगा। यहां पर प्रतिवर्ष न जाने कितने ही लाख रुपये, धर्मनिमित्त खर्च होते होंगे।

पालीताणा शहर से मील डेढ मील के फासले पर, पश्चिम की तरफ सुप्रसिद्ध शत्रुंजय नामक पर्वत है। शहर से पर्वत की उपत्यका तक

---

* सन् १९११ की मनुष्य-गणना के संख्यांक न मिलने के कारण यहां पर १८९१ के सन् के दिये हैं।

पक्की सडक बनी हुई है और दोनों तरफ वृक्षों की पंक्तियें लगी हुई हैं। इस पर्वत के सिद्धाचल, विमलाचल और पुण्डरिकगिरि आदि और नाम भी जैनसमाज में प्रचलित है। जैनग्रंथों में इस के २१ या १०८ तक भी नाम लिखे हुए मिलते हैं ! समुद्र के जलसे यह १९८० फीट ऊँचा है। पहाड कोई बहुत बडा या विशेष रमणीय नहीं है। परंतु जैनग्रंथ, माहात्म्य में इसे संसार भर के स्थानों से अत्यधिक बताते हैं। यों तो सेंकडों ही ग्रंथों में इस पर्वत की पवित्रता और पूज्यता का उल्लेख मिलता है परंतु **धनेश्वर** नाम के एक आचार्य का बनाया हुआ **शत्रुंजय-माहात्म्य** नाम का एक खास बडा ग्रंथ ही संस्कृत में, इस पर्वत की महिमाविषयक विद्यमान है। इस ग्रंथ में, इस पहाड का बहुत ही अलौकिक वर्णन किया गया है। हिन्दुधर्म में जिस तरह सत्ययुग, कलि-युग आदि प्रवर्तमान काल के ४ विभाग माने हुए हैं वैसे जैनधर्म में भी सुषमारक, दुःषमारक आदि ६ विभाग माने गये हैं। इन आरकों के अनुसार भारतवर्ष की प्रत्येक वस्तुओं के स्वभाव और प्रमाण आदि में परिवर्तन हुआ करते हैं। इस निमायानु सार शत्रुंजय पर्वत के विस्तृत्व और उच्चत्व में भी परावर्तन होता रहता है। माहात्म्य में लिखा है कि शत्रुंजयगिरि का प्रमाण, प्रथमारक में ८० योजन, दूसरे में ७०, तीसरे में ६०, चौथे में ५०, पाँचवे में १२ और छट्ठे में केवल ७ हाथ जितना होता है। अंग्रेजों के पवित्र स्थान **अमोना** की तरह प्रलय काल में इस पर्वत का भी सर्वथा नाश न होने का उल्लेख इस माहात्म्य में किया हुआ है।

इस पर्वत का पौराणिक-पद्धत्ति पर प्राचीन इतिहास भी, इस माहात्म्य में विस्तार पूर्वक लिखा है। इस काल के तृतीयारक के अंत में जैनधर्म के प्रथम-प्रवर्तक **श्रीऋषभदेव** भगवान् अवतीर्ण हुए। जैन-धर्म में जो २४ तीर्थंकर माने जाते हैं उन में ये प्रथम-तीर्थंकर थे।

इस कारण इन्हें **आदिनाथ** भी कहते हैं। जैनमत से, प्रवर्तमान भारतीय मानव-संस्कृति के कर्ता ये ही आदिपुरुष हैं। इन्हों ने अपने जीवन के अंतिम काल में संसार का त्याग कर श्रमणपना अंगीकार किया और अनेक प्रकारकी तपश्चर्यायें कर कैवल्य प्राप्त किया। अपनी कैवल्यावस्था में अनेकानेक वार ये शत्रुंजय पर्वत पर पधारे और इन्द्रादिकों के आगे इस पर्वत की पूज्यता और पवित्रता का वर्णन किया। भगवान् आदिनाथ के पुत्र चक्रवर्ती **भरतराज** ने इस पर्वत पर एक बहुत विशाल और परम मनोहर सुवर्णमय मंदिर बनवाया और उस में रत्नमय भगवन्मूर्ति स्थापित की। तब ही से यह पर्वत जैनधर्म में परम-पावन स्थान गिना जाने लगा। भगवान् **आदिनाथ** के प्रथम गणधर और भरतनृपति के प्रथम पुत्र **पुण्डरीक** नामक महर्षि पाँच-कोटि मुनियों के साथ चैत्री पूर्णिमा के दिन यहां पर मुक्त हुए। इस के स्मरणार्थ प्रति वर्ष इस पूर्णिमा को यहां पर आज भी हजारों जैन यात्रार्थ आते हैं। इन के सिवा **नमि–विनमी** नाम के विद्याधर दो करोड मुनियों के साथ, **द्रविड** और **वारिखिल्य** नाम के दो भाई दश करोड मुनियों के साथ, भरतराज और उनके उत्तराधिकारी असंख्य नृपति, **राम–भरतादि** तीन करोड मुनि, **श्रीकृष्ण** के **प्रद्युम्न** और **शाम्ब** आदि साढे आठ करोड कुमार, वीस करोड मुनि सहित **पांडव भ्राता** और **नारदादि** ९१ लाख मुनि यहां पर मुक्ति को पहुंचे हैं। और भी हजारों ऋषि-मुनि इस पर्वत पर तपश्चर्या कर निर्वाण प्राप्त हुए हैं। अनादि काल से असंख्य तीर्थंकर और श्रमण यहां पर मोक्ष को गये हैं और जायँगे। एक **नेमिनाथ** तीर्थंकर को छोड कर शेष सब २३ ही तीर्थंकर इस गिरि का स्पर्श कर गये हैं। इस कारण यह तीर्थ संसार में सब से अधिक पवित्र हैं। जो मनुष्य भावपूर्वक एक वार भी इस सिद्धक्षेत्र का स्पर्श कर पाता है वह तीन जन्म के भीतर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस तीर्थ में

जो पशु और पक्षी रहते हैं वे भी जन्मान्तरों में मुक्त हो जायँगे। यहां तक लिखा है कि—

मयूरसर्पसिंहाद्या हिंस्रा अप्यत्र पर्वते।
सिद्धाः सिध्यन्ति सेत्स्यन्ति प्राणिनो जिनदर्शनात्॥
बाल्येपि यौवने वार्ध्ये तिर्यक्जातौ च यत्कृतम्।
तत्पापं विलयं याति सिद्धाद्रेः स्पर्शनादपि॥

अर्थात्–मयूर, सर्प और सिंह आदि जैसे क्रूर और हिंसक प्राणी भी, जो इस पर्वत पर रहते हैं, जिन-देव के दर्शन से सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। तथा बाल, यौवन और वृद्धावस्था में या तिर्यंच जाति में जों पाप किया हों वह इस पर्वत के स्पर्श मात्र से ही नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार बहुत कुछ इस गिरि का, इस ग्रंथ में माहात्म्य लिखा हुआ है। भरतराज ने इस गिरि पर जो कांचनमय मंदिर बनाया था उस का पुनरुद्धार पीछे से अनेक देव और नृपतियों ने किया। पुराण युग में किये गये ऐसे १२ उद्धारोंका–तथा कुछ ऐतिहासिक युग के भी उद्धारों का वर्णन इस माहात्म्य में लिखा हुआ है। भरतादिकों ने जो रत्नमय और पिछले उद्धारकों ने जो कांचनमय या रजतमय जिनप्रतिमायें प्रतिष्ठित की थीं उन्हें, अन्य उद्धारकोंने, भावी काल की निःकृष्टता का खयाल कर, पर्वत के किसी गुप्त गुहा-स्थान में स्थापित कर देने का जिक्र भी माहात्म्यकार ने स्पष्ट कर दिया है। और लिखा है कि वहां पर—उन गुप्त स्थानों में—आज भी उन प्रतिमाओं की देवता निरंतर पूजा किया करते हैं! पुराण-युग के १२ उद्धारों की नामावली इस प्रकार है—

१—आदिनाथ तीर्थंकर के समय में भरत राजा का उद्धार।

२—भरतराज के आठवे वंशज दंडवीर्य राजा का उद्धार।

३—सीमन्धर तीर्थंकर के उपदेश से ईशानेन्द्र का उद्धार ।

४—माहेन्द्र नामक देवेन्द्र का उद्धार ।

५—पाँचवे इन्द्र का उद्धार ।

६—चमरेन्द्र का उद्धार ।

७—अजितनाथ तीर्थंकर के वारे में सगर चक्रवर्ती का उद्धार ।

८—व्यन्तरेन्द्र का उद्धार ।

९—चन्द्रप्रभु तीर्थंकर के समय में चन्द्रयशा नृप का उद्धार ।

१०—शान्तिनाथ तीर्थंकर के पुत्र चक्रायुद्ध का उद्धार ।

११—मुनिसुव्रतस्वामी के शासन में रामचन्द्र का उद्धार ।

१२—नेमिनाथ तीर्थंकर की विद्यमानता में पाण्डवों का उद्धार ।

ऐतिहासिक–युग के उद्धारों में **जावड-शाह** का उद्धार मुख्यतया इस माहात्म्य में वर्णित है । सर अलेक्झान्डर किन्लॉक **फॉर्बस** (Hon'-ble Alexander Kinloch Forbes.) साहबने अपनी **'रासमाला'** नामक गुजरात के इतिहास की सुप्रसिद्ध पुस्तक में भी इस उद्धार का वर्णन उध्दृत किया है जो यहां पर दिया जाता है ।

" जिस समय सुप्रसिद्ध नृपति **विक्रमादित्य** इस भारत-भूमि को ऋणमुक्त कर रहे थे उस समय **भावड** नामक एक दरिद्र-श्रावक **भावल** नामक अपनी भार्या सहित **काम्पिल्यपुर** नामक स्थान में रहता था। एक समय दो जैनमुनि उस के घर भिक्षार्थ आए । **भावल** ने उन्हें शुद्ध और निर्दोष आहार का भावपूर्वक दान दिया और बाद में अपनी दरिद्रावस्था के विषय में कुछ प्रश्न किया । मुनिने कहा:–एक उत्तम जाति की घोडी तुमारे घर पर बिकने आयगी उसे तुमने ले लेना । उस घोडी के कारण तुमारी दरिद्रता नष्ट हो जायगी । यह कह कर मुनि अपने स्थान पर

चले गये। भावल ने अपने पति भावड से मुनियों का कथन कह सुनाया। थोडे ही दिन में एक घोडी उस के घर पर आइ जिसे उसने खरीद लिया। उस की उसने अच्छी संभाल रक्खी। कुछ समय बाद उस ने एक उत्तम लक्षण वाले घोडे को जन्म दिया। योग्य उम्र में आ जाने पर, एक राजा के पास उसे बेच दिया। राजाने उस के मूल्य में ३ लाख रुपये दिये। इन रुपयों द्वारा भावड ने बहुत से अच्छे अच्छे घोडे खरीद किये और उन्हें अच्छी तरह तैयार कर महाराज विक्रमादित्य के पास ले गया। राजा ने उन घोडों को ले कर उस के बदले में मधुवती (हाल में जिसे महुवा-बंदर कहते हैं और जो शत्रुंजय से दक्षिण की ओर २०-२५ मील दूर पर है) गाँव भावड को इनाम में दिया। वहां पर भावड के एक पुत्र हुआ जिस का नाम जावड रक्खा गया। कुछ समय बाद भावड मर गया और जावड अपने पिताकी संपत्ति का मालिक बना। एक समय, म्लेच्छ लोगों का बडा भारी हमला समुद्र द्वारा आया और सौराष्ट्र, लाट कच्छ वगैरह देशों को खूब लूटा। इन देशों की बहुत सी संपत्ति के साथ कितने ही बाल बच्चों तथा स्त्री-पुरुषों को भी पकड कर वे अपने देश में ले गये। दुर्भाग्य वश जावड भी उन्हीं में पकडा गया। जावड बडा बुद्धिशाली और चतुर व्यापारी था इस लिये वह अपने कौशल से उन म्लेच्छों को प्रसन्न कर वहीं स्वतंत्र रूपसे रहने लगा और व्यापार चलाने लगा। व्यापार में उसे थोडे ही समय में बहुत द्रव्य प्राप्त हो गया। वह उस म्लेच्छ-भूमि में भी अपने स्वदेश की ही समान जैनधर्म का पालन करने लगा। वहां पर एक सुंदर जैनमंदिर भी उस ने बनाया। जो कोई अपने देश का मनुष्य वहां पर चला आता था उसे जावड सर्वप्रकार की सहायता देता था। इस से बहुत सा जैनसमुदाय वहां पर एकत्र हो गया था। किसी समय कोई जैन मुनि उस नगर में

जा पहुंचे । **जावड** ने उन का बडे हर्षपूर्वक सत्कार किया । प्रसंगवश मुनिमहाराज ने **शत्रुंजयतीर्थ** का हाल सुनाया और म्लेच्छों ने उस को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया है इस लिये पुनरुद्धार करने की आवश्यकता बताई । **जावड** ने अपने सिर इस कार्य को लिया। एक महिने की तपश्चर्या कर **चक्रेश्वरी–देवी** का आराधन किया । देवी ने प्रसन्न हो कर कहा–' **तक्षशिला** नगरी में, **जगन्मल्ल** नामक राजा के पास जा कर, वहां के धर्मचक्र के अग्रभाग में रहा हुआ जो अर्हद्बिम्ब है, उसे ले जा कर **शत्रुंजय** पर स्थापन कर ।' देवी के कथनानुसार **जावड तक्षशिला** में गया और राजा की आज्ञा पा कर धर्मचक्र में रही हुई **ऋषभदेव** तीर्थंकर की प्रतिमा को तीन प्रदक्षिणा दे कर उठाई । महोत्सव के साथ उस प्रतिमाको अपने जन्म–स्थान **मधुमती** में लाया । जावड ने बहुत वर्षों पहले, म्लेच्छ-देश में से बहुत से जहाज, माल भर कर चीन वगैरह देशों को भेजे थे वे समुद्र में घूमते फिरते इसी समय **मधुमती** नगर के किनारे आ लगे । ये जहाज माल बेच कर उस के बदले में सुन्ना भर कर लाये थे । **जावड** को इन की खबर सुन कर बहुत खुशी हुई । सब जहाज वहीं पर खाली कर लिये गये । जैनसंघ के आचार्य **श्रीवज्रस्वामी** भी इस समय **मधुमती** में पधारे । उन की अध्यक्षता में **जावड** नें वहां से बडा भारी संघ निकाला और उस भगवत्प्रतिमा को ले कर **शत्रुंजय** के पास पहुंचा । आचार्य **श्रीवज्रस्वामी** के साथ **जावड** सारे ही संघ समेत गिरिराज पर चढने लगा । असुरों ने रास्ते में कितने ही उपद्रव और विघ्न किये जिन का शान्तिकर्म द्वारा **श्रीवज्रस्वामी** ने निवारण किया । ऊपर जा कर देखा तो सर्वत्र हड्डी वगैरह अपवित्र पदार्थ पडे हुए थे । मन्दिरों पर बेसुमार घास ऊगी हुई थी । शिखर आदि टूट फूट गये थे । तीर्थ की यह अधमावस्था

देख कर संघपति और संघ बडा खिन्न हुआ। जावड ने पहले सब जगह साफ करवाई। शत्रुंजयी नदी के जल से सर्वत्र प्रक्षालन करवाया। मन्दिरों का स्मारक काम बनवा कर तक्षशिला से लाई हुई प्रतिमा की स्थापना की। उस कार्य में असुरों ने बहुत कुछ विघ्न डाले परंतु श्रीवज्रस्वामी ने अपने दैवी सामर्थ्य से उन सब का निवारण किया। प्रतिष्ठादिक कार्यों में जावड ने अगणित धन खर्च किया। मन्दिर के शिखरपर ध्वजारोपण करने के लिये जावड स्वयं अपनी स्त्री सहित शिखर पर चढा। ध्वजारोपण किये बाद सर्व कार्यों की पूर्णाहूति हुई समझ कर और अपने हाथों से इस महान् तीर्थ का उद्धार हुआ देख कर दोनों (दम्पति) के हर्ष का पार नहीं रहा। वे आनन्दावेश में आ कर वहीं पर नाचने लगे जिससे शिखर पर से नीचे गिर पडे। मर्मांतक आघात लगने के कारण, तत्काल शरीर त्याग कर उन का उन्नत आत्मा स्वर्ग की ओर प्रस्थित हो गया। जावड के पुत्र जाजनाग और संघ ने इस विपत्ति का बडा दुःख मनाया। परन्तु आचार्य महाराज के उपदेश से सब शान्तचित्त हुए। जावड ने इस तीर्थ की रक्षाके लिये और भी अनेक प्रबन्ध करने चाहे थे परंतु भवितव्यता के आगे वे विफल गये। इस कारण आज भी जो कार्य पूर्णता को नहीं पहुंचता उस के विषय में 'यह तो जावड भावड कार्य है!' ऐसी लोकोक्ति इस देशमें (गुजरात और काठियावाड में) प्रचलित है।"

जावड शाह के इस उद्धार की मीति विक्रम संवत् १०८ दी गई है। इस उद्धार के बाद के एक और उद्धार का भी इस माहात्म्य में उल्लेख है। यह संवत् ४७७ में हुआ था। इस का कर्ता वल्लभी का राजा शिलादित्य था। जावड शाह के उद्धार बाद सौराष्ट्र और लाट आदि देशो में बौद्धधर्म का विशेष जोर बढने लगा। परवादियों के लिये दुर्जय ऐसे बौद्धाचार्यों ने इन देशों के राजओं को अपने मतानुयायी

बनाये और उन के द्वारा जैनधर्म के आचार्यों को देशनिकाल दिलवया। जैनों के जितने तीर्थ थे उन पर बौद्धाचार्यों ने अपना दखल जमाया और उन में अर्हतों की मूर्तियों की जगह बुद्धमूर्तियें स्थापित की। **शत्रुंजय** तीर्थ पर भी उन्हों ने वैसा ही बर्ताव किया। कुछ समय बाद **चंद्रगच्छ** में **धनेश्वरसूरि** नाम के एक तेजस्वी जैनाचार्य हुए। उन्हों ने **वल्लभी** के राजा **शिलादित्य** को प्रतिबोध किया और उसे जैन बनाया। राजा बौद्धों के अत्याचारों से रुष्ट हो कर उन्हें देश-निकाल किया। **धनेश्वरसूरि** ने यह **शत्रुंजय-महात्मय** बनाया*। इस का श्रवण कर **शिलादित्य** ने **शत्रुंजय** का पुनरुद्धार करवाया और **ऋषभदेव** भगवान की नई मूर्ति प्रतिष्ठित की। इस प्रकार ऐतिहासिक-युग के इन दो उद्धारों का वर्णन इस माहात्म्य में हैं।

इस माहात्म्य के सिवा, इस तीर्थ के दो कल्प भी मिलते हैं जिन में का एक प्राकृत में है और दूसरा संस्कृत में। प्राकृत-कल्प के कर्ता **तपागच्छ** के आचार्य **धर्मघोषसूरि** हैं और संस्कृत के कर्ता **खरतरगच्छ** के **जिनप्रभसूरि**। शत्रुंजय माहात्म्य में जिन बातों का विस्तृत वर्णन है, इन कल्पों में उन सब का संक्षिप्त सूचन मात्र है। इन कल्पों में यह भी लिखा है कि -इस तीर्थ -पर्वत- पर अनेक प्रकार के रत्नों की खानें हैं, नाना तरह की चित्र विचित्र जड़ीबुट्टियें हैं, कई रसकुंपिकायें छीपी हुई हैं और गुप्त गुहाओं में, पूर्व काल के उद्धारकों की करवाई हुई रत्नमय तथा सुवर्णमय जिनप्रतिमायें, देवताओं द्वारा सदा पूजित रहती हैं।

प्रभावक आचार्यों द्वारा शत्रुंजय का इस प्रकार, अलौकिक और आश्चर्यजनक माहात्म्य कहे जाने के कारण जैन प्रजा की इस तीर्थ पर

---

* ऐतिहासिक विद्वान इस के कर्तृत्व विषय में शंकाशील हैं। वे इसे आधुनिक बताते हैं। 'बृहट्टिप्पनिका' के लेखक का भी यही मत है। हमने केवल माहात्म्य की दृष्टि से इस का उल्लेख किया है, इतिहास की दृष्टि से नहीं।

सेंकडों वर्षों से अनुपम आस्था रही हुई है। यही कारण है कि, अन्यान्य सेंकडों बडे बडे तीर्थों का नाम जैनप्रजा जब सर्वथा भूल गई है तब, अनेकानेक विपत्तियों के उपस्थित होने पर भी आज तक इस तीर्थ का वैसा ही गौरव बना हुआ है। परमार्हत महाराज **कुमारपाल** के समय, कि जब जैनप्रजा भारतवर्ष के प्रजागण में सर्वोच्च स्थान पर विराजित थी तब, जैसा इस तीर्थ पर द्रव्य व्यय कर रही थी वैसा ही आज भी कर रही है। मतलब यह कि देश पर अनेक विप्लव, अनेक अत्याचार, अनेक कष्ट और आपदायें आ जाने पर भी, कई वार म्लेच्छों द्वारा मंदिर और मूर्तियें नष्ट-भ्रष्ट किये जाने पर भी, यह तीर्थ जो वैसा का वैसा ही तैयार होता रहा है इस का कारण केवल जैन-प्रजा की हार्दिक भक्ति ही है। जैनों ने इस तीर्थ पर जितना द्रव्य खर्च किया है उतना संसार के शायद ही किसी तीर्थ पर, किसी प्रजा ने किया होगा। अलेक्सान्डर **फार्बस** साहब ने, **रासमाला** में, यथार्थ ही लिखा है कि—" हिन्दुस्थान में, चारों तरफ से—सिंधुनदी से लेकर पवित्र गंगानदी तक और हिमालय के हिम-मुकुटधारी शिखरों से तो उस की कन्या कुमारी, जो रुद्र के लिये अर्द्धांगना तया सर्जित हुई है, उस के भद्रासन पर्यंत के प्रदेश में एक भी नगर ऐसा न होगा जहां से एक या दूसरी बार, शत्रुंजय पर्वत के शृंग को शोभित करनेवाले मंदिरों को द्रव्य की विपुल भेंटें न आई हों।" (RÂS-MÂLÂ VOL, I. Page 6.)

इस तीर्थ में पूज्यबुद्धि रखने वाले जैनसमाज में ऐसे विरल ही मनुष्य मिलेंगे जो जीवन में एक बार भी इस तीर्थ की यात्रा न कर गये हों या न करना चाहते हों। हजारों मनुष्य तो ऐसे हैं जो वर्ष भर में कई दफे यहां हो जाते हैं। हिंदुस्तान में रेल्वे का प्रचार होने के पूर्व यात्रियों को दूरदेश की मुसाफिरी करनी इतनी सहज न थी

जितनी आज है। उस समय बडी बडी काठिनाइयें रास्ते में भुगतनी पडती थी, कई दफे लुटेरों और डाकूओं द्वारा जान-माल तक भी लूटा जाता था, राजकीय विपत्तियों में बेतरह फंस जाना पडता था, तो भी प्रतिवर्ष लाखों लोग इस महातीर्थ की यात्रा करने के लिये अवश्य आया जाया करते थे। उस जमाने में, वर्तमान समय की तरह छूटे छूटे मनुष्यों का आना बडा ही कठिन और कष्टजन्य था इस लिये सेंकडों-हजारों मनुष्यों का समुदाय एकत्र हो कर और शक्य उतना सब प्रकार का बन्दोबस्त कर के आते जाते थे। इस प्रकार के यात्रियों के समुदाय का ' संघ ' के नाम से व्यवहार होता था। उस पिछले जमाने में प्रायः जितने अच्छे धनिक और वैभवशाली श्रावक होते थे वे अपने जीवन में, संपत्ति अनुसार धन खर्च कर, अपनी ओर से ऐसे एक दो या उस से भी अधिक वार संघ निकालते थे और साधारण अवस्था वाले हजारों श्रावकों को अपने द्रव्य से इस गिरिराज की यात्रा कराते थे। गूर्जरमहामात्य **वस्तुपाल–तेजपाल** जैसोंने लाखों–लाखों क्यों करोडों–रुपये खर्च कर कई वार संघ निकाले थे। उन पुराणे दानवीरों की बात जाने दीजिए। गत १९ वीं शताब्दी के अंत में तथा इस २० वीं के प्रारंभ में भी ऐसे कितने ही भाग्यशालियों ने संघ निकाले थे जिन में लाखों रुपये व्यय किये गये थे। **संवत् १८९५ में, जेसलमेर के * पटवों ने जो संघ निकाला था उस में कोई १३ लाख रुपये खर्च हुए थे।** अहमदाबाद की **हरकुंअर शेठाणी** के संघ में भी कई लाख लगे थे।

शत्रुंजय–माहात्म्य में संघ निकाल कर इस गिरीश्वर की यात्रा करने—कराने में बडा पुण्य उत्पन्न होना लिखा है और जो* संघपति–

---

* इस संघ का संपूर्ण वृत्तान्त जानने के लिये देखो " **पटवों के संघ का इतिहास** " नामक मेरी पुस्तक।

पद प्राप्त करता है उस का जन्म सफल होना माना गया है। संघपति पद की बहुत ही प्रशंसा की गई है। लिखा है कि:—

ऐन्द्रं पदं चक्रिपदं श्लाघ्यं श्लाघ्यतरं पुनः।
संघाधिपपदं ताभ्यां न विना सुकृतार्जनात् ॥

अर्थात्– इन्द्र और चक्रवर्ती के पद तो जगत् में श्रेष्ठ है ही परंतु 'संघपति' का पद इन दोनों से अधिक उच्च है जो विना सुकृत के प्राप्त नहीं होता। इस श्रेष्ठता के कारण जिन के पास पूर्वपुण्य से यथेष्ट संपत्ति विद्यमान होती है वे इस पद को प्राप्त करने की अभिलाषा रक्खें यह स्वाभाविक ही है। सचमुच ही जो मनुष्य शास्त्रोक्त रीति से भावपूर्वक संघ निकालता है वह अवश्य ही महत्पुण्य उपार्जन करता है। सच्चा संघपति केवल उदारता ही के कारण नहीं बनता परंतु न्याय, नीति, दया और इन्द्रियदमन आदि और भी अनेकानेक उत्तम गुणों को धारण करने के कारण बनता है। पिछले जमानों में मंत्री बाहड, वस्तुपाल–तेजपाल, जगडू शाह, पेथड शाह, समरा शाह, आदि असंख्य श्रावकों ने ऐसे संघ निकाल कर अगणित सुकृत उपार्जन किया है।

* * * *

* जो संघ निकालता है उसे चतुर्विध समुदाय की ओर से '**संघपति**' का पद समर्पित किया जाता है जो उस के भावी वंशज भी उस पदका मान प्राप्त करते रहते हैं। जैनप्रजा में बहुत से कुटुम्बों की जो '**संघवी**' अटक है वह इसी '**संघपति**' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है। किसी पूर्वज के संघ निकालने के कारण यह पद उस कुटुम्बको प्राप्त हुआ होता है।

आधुनिक वृत्तान्त।

शत्रुंजय पर्वतका प्राचीन परिचय करा कर अब हम पाठकों को इस के ऊपर ले चलते हैं और वर्तमान समय में जो कुछ विद्यमान हैं उस का कुछ थोडा सा अभिज्ञान कराते हैं।

पालीताणा शहर में मे जो सडक शत्रुंजयकी ओर जाती है वह पहाड के मूल तक पहुंचती है। इस स्थान को '**भाथा तलेटी**' कहते हैं। यहां पर एक दो मकान बने हुए हैं जिन में जो यात्री पर्वत की यात्रा कर वापस लौटता है उसे विश्रान्ति लेने के लिये. अच्छा आश्रय मिलता है। प्रत्येक यात्री को लगभग पावभर का एक मोतीचूर का लड्डू और थोडे से बेसन के सेव खाने के लिये दिये जाते हैं। इन को खा कर और ऊपर ठंडा जल पी कर थके हुए यात्री बहुत कुछ आश्वासन पाते हैं। इस को गुजराती बोली में 'भाथा' कहते हैं। इसी के नाम पर यह स्थान 'भाथातलेटी' कहा जाता है। जो त्यागी ठंडा-(कच्चा) पानी नहीं पीते उन के लिये पानी गर्म कर के ठारा हुआ भी तैयार रहता है। इक्के, गाडी, घोडे, आदि वाहन यहीं तक चल सकते हैं। यहां से पहाड का चढाव शुरू होता है। चढते समय दाहनी तरफ बाबू का विशाल मंदिर मिलता है। यह मंदिर बंगाल के मुर्शिदाबाद वाले सुप्रसिद्ध रायबहादुर बाबू **धनपतिसिंह** और **लक्ष्मीपतिसिंह** ने अपनी माता **महेताबकुंअर** के स्मरणार्थ बनाया है। संवत् १९५० में, अपने बडे रिसाले के साथ आकर बाबूजी ने बडी धामधूमसे इस की प्रतिष्ठा कराई है। इस मंदिर में बाबूजी ने बहुत धन खर्च किया है। मंदिर बडा सुशोभित और खूब सजा हुआ है। उक्त बाबूजी ने अनेक धर्मकृत्य किये हैं और उन में लाखों रुपये बडी उदारता के साथ व्यय

किये हैं। उन्हों ने कोई दो--ढाई लाख रुपये खर्च कर जैनसूत्रों को भी छपवाया था। ये सूत्र सब स्थानों में, सन्दूकों में भर भर कर भेज दिये गये थे। जितने बचे हैं वे इस मंदिर में--एक स्थान में, रक्खे हुए हैं। जिन को जरूरत होती है उन्हें, यदि योग्य समझा तो, मुफ्त दिये जाते हैं।

पर्वत के चढाव का वर्णन **जैनहितैषी** के सुयोग्य सम्पादक दिगम्बर विद्वान् श्रीयुत **नाथूरामजी** प्रेमी ने अपने एक लेखमें, संक्षेप में परंतु बडी अच्छी रीतिसे, लिखा है जो यहां पर उद्धृत किया जाता है।

" इस टोंक को छोड कर कुछ ऊँचे चढने पर एक विश्रामस्थल मिलता है जिसे ' धोली परब का विसामा ' कहते हैं। यहां पानी की एक प्याऊ (प्रपा) लगी है। इस तरह के विश्रामस्थलों, प्रपाओं, कुंडों तथा जलाशयों का प्रबन्ध थोडी थोडी दूर पर सारे ही पर्वत पर हो रहा है। इन से यात्रियों को बहुत आराम मिलता है। धूप और शक्तिसे अधिक परिश्रममें व्याकुल हुए स्त्री-पुरुष इस प्रपाओं के शीतल जल को पी कर मानों खोई हुई शक्ति को फिरसे प्राप्त कर लेते हैं। इस प्याऊ के समीप ही एक छोटीसी देहरी है जिसमें भरतचक्रवर्ती के चरण स्थापित हैं। इन की स्थापना वि. सं. १६८५ में हुई है। इस तरह की देहरियां जगह जगह बनी हुई हैं जिन में कहीं चरण ओर कहीं प्रतिमायें स्थापित हैं।

" आगे एक जगह कुमारपाल कुण्ड और कुमारपाल का विश्रामस्थल है। कहते हैं कि यह गुजरात के चालुक्यवंशीय राजा **कुमारपाल** का बनवाया हुआ है।

" जब पर्वत की चढाई लगभग आधी रह जाती है तब हिंगलाज देवी की देहरी मिलती है। यहां एक बूढा ब्राह्मण बैठा रहता है जो

बडे जोर जोरसे चिल्लाकर कहता है कि—" आदीश्वर भगवान के इतने करोड पुत्र सिद्धपदको प्राप्त हुए हैं, " और देवी को कुछ चढाते जाने के लिये सब को सचेत करता रहता है। भोले लोग समझते हैं कि हिंगलाजकी पूजा करने से पर्वत के चढने में कष्ट नहीं होता है! यहां से चढाई बिलकुल खडी और ठाँठी होनेके कारण कुछ कठिन है।

" आगे सबसे अन्तिम टेकरीपर हनुमान की देहरी मिलती है। इस में सिन्दूरलिप्त वानराकार हनुमानकी मूर्ति विराजमान् है। इसी प्रकार की गणेश, भवानी आदि हिन्दू देव–देवियों की मूर्तियाँ और भी कई जगह स्थापित हैं। इन की स्थापना पर्वत के ब्राह्मण पुजारियों या सिपाहियों ने की होगी।

" यहाँ से आगे दो रास्ते निकले हैं। (एक सीधा बडी टोंक को जाता है और दूसरा सब टोंकों में हो कर वहां जाता है।) दाहनी ओर के रास्ते से पहले कोट के भीतर जाना होता है। यहां एक झाड के नीचे एक मुसलमान पीर की कब्र बनी हुई है। इस के विषय में एक दन्तकथा प्रचलित है कि—**अंगारशा** नाम का एक करामाती फकीर था। वह जब जीता था तब पाँच भूतों को अपने काबू में रख सकता था। उस ने एक बार गर्वित हो कर **आदिनाथ** भगवानकी प्रतिमापर कुछ उत्पात मचाया, इस से किसी ने उसे मार डाला। मर कर वह पिशाच हुआ। और मंदिर के पूजारियों को तरह तरह की तकलीफें देने लगा और आखिर इस शर्तपर शान्त हुआ कि इस स्थानपर मेरी हड्डियां गड़ाइ जायँ। लाचार हो कर लोगों ने वहां उस की कब्र बनादी। कर्नल टॉड साहब को इस प्रवाद पर विश्वास नहीं है। वे कहते हैं कि हिन्दू लोग इस प्रकार की दन्तकथायें गढ लेने में बडे ही सिद्धहस्त हैं। यदि कभी किसी मौके पर उन के धर्म का अपमान हो और वे अपने प्रति-पक्षीसे टक्कर न ले सकें तो वे उस अपमान को दूर करने के लिये

इसी हिकमत को काम में लाया करते हैं। इस विषय में श्रावक लोगों में जो प्रवाद चला आ रहा है वह अवश्य ही कुछ ठीक जान पडता है। प्रवाद यह है कि बादशाह अलाउद्दीन के समयमें श्रावकों ने अपनी रक्षा के लिये यह कब्र बनवाई थी। एक मुसलमान फकीर की कब्र के कारण—जो की बहुत ही पूज्य समझा जाता था—बहुत संभव है कि मुसलमानों ने इस पवित्र तीर्थ पर उत्पात मचाना उचित न समझा हो। शुरू से यह स्थान श्रावकों के ही अधिकार में चला आता है।

" पर्वत की चोटी के दो भाग हैं। ये दोनों ही लगभग तीन सौ अस्सी अस्सी गज लम्बे हैं और सर्वत्र ही मन्दिरमय हो रहे हैं। मन्दिरों के समूह को टोंक कहते हैं। टोंक में एक मुख्य मंदिर और दूसरे अनेक छोटे छोटे मंदिर होते हैं। यहां की प्रत्येक टोंक एक एक मजबूत कोट से घिरी हुई है। एक एक कोट में कई कई दर्वाजे हैं। इन में से कई कोट बहुत ही बडे बडे हैं। उन की बनावट बिलकुल किलों के ढंग की है। टोंक विस्तार में छोटी बडी हैं। अन्त की दशवीं टोंक सबसे बडी है। उस ने पर्वत की चोटी का दूसरा हिस्सा सब का सब रोक रक्खा है।

" पर्वत की चोटी के किसी भी स्थान में खडे होकर आप देखिए हजारों मन्दिरों का बडा ही सुन्दर, दिव्य और आश्चर्यजनक दृश्य दिखलाई देता है। इस समय दुनिया में शायद ही कोई पर्वत ऐसा होगा जिस पर इतने सघन, अगणित और बहु—मूल्य मन्दिर बनवाये गये हों। मन्दिरों का इसे एक शहर ही समझना चाहिए। पर्वत के बहिःप्रदेशों का सुदूर—व्यापी दृश्य भी यहां से बडा ही रमणीय दिखलाई देता है।"

फार्बस साहब '**रासमाला**' में लिखते हैं कि—" शत्रुंजय पर्वत के शिखर ऊपर से, पश्चिम दिशा की ओर देखते, जब आकाश निर्मल और दिन प्रकाशमान होता है तब, **नेमिनाथ** तीर्थंकर के कारण पवि-

त्रता को पाया हुआ रमणीय पर्वत **गिरनार** दिखाई देता है। उत्तर की तरफ **शीहोर** की आसपास के पहाड, नष्टावस्था को प्राप्त हुई हुई **वल्लभी** के विचित्र दृश्यों का शायद ही रुन्धन करते है। आदिनाथ के पर्वतकी तलेटी से सटे हुए **पालिताणा** शहर के मिनारे, जो घन-घटा के आरपार, धूप में चलका करते हैं, दृष्टिगोचर होने पर दृश्य के अग्रगामी बनते हैं; और नजर जो है सो चाँदी के प्रवाह समान चमकती हुई **शत्रुंजयी नदी** के बांके चूंके बहते पूर्वीय प्रवाह के साथ धीरे धीरे चलती हुई तलाजे के, सुंदर देवमंदिरों से शोभित पर्वत पर, थोडी सी देर तक जा ठहरती है, और वहां से परलीपार जहां प्राचीन **गोपनाथ** और **मधुमती** को, ऊछलते समुद्र की लीला करती हूई लहरें आ आकर टकराती हैं, वहां तक पहुंच जाती है।"

पर्वत पर की सभी टोंकों के इर्द गिर्द एक बडा मजबूत पत्थरका कोट बना हुआ है। कोट में गोली चलाने योग्य भवांरियॉ भी बनी हुई हैं। इस कोट के कारण पर्वत एक किले ही का रूप धारण किये हुए है। टोंकों में प्रवेश करने के लिये आखे कोट में केवल दो ही बडे दर्वाजे बने हुए हैं। "कोटके भीतर प्रवेश कीजिए कि एक चौक के बाद दूसरा चौक और दूसरे के बाद तीसरा; इसी तरह एक मन्दिर के बाद दूसरा मन्दिर और दूसरे के बाद तीसरा;—चौक और मन्दिर मिलते चले जायँगे। मन्दिरो की कारीगरी, उन की बनावट, उन में लगा हुआ पत्थर और उन के भीतर की सजावट का सैंकडों प्रकार का सामान आदि सब ही चीजें बहुमूल्य हैं। प्रतिमाओं की तो कुछ गिनती ही नहीं हैं। एक श्रद्धालु भक्त की जिधर को नजर जाती है, उधर ही उसे मुक्तात्माओं के प्रतिबिम्ब दिखलाइ देते हैं। कुछ समय के लिये तो मानो वह आपको मुक्तिनगरी का एक पथिक समझने लगता है।"

फार्बस साहब भी कहते हैं कि— "प्रत्येक मन्दिर के गर्भागार में आदिनाथ अजितनाथ वगैरह तीर्थंकरों की एक या अधिक मूर्तियें विराजमान हैं। उदासीनवृत्ति को धारण की हुई इन संगमर्मर की मूर्तियों का सुन्दर आकार, चाँदीकी दीपिकाओं के मन्द प्रकाश में अस्पष्ट परंतु भव्य दिखाई देता है। अगरबत्तियों की सघन सुगन्धि सारे पर्वत पर व्याप्त रहती है। संगमर्मर के चमकीले फरसपर भक्तिमान् स्त्रियें, सुवर्ण के शृंगार और विविध रंग के वस्त्र पहन कर जगजगाहट मारती हुई और एकस्वर से परंतु मधुर अवाज से स्तवना करती हुई, नंगे पैर से धीमे धीमे मंदिरों को प्रदक्षिणा दिया करती हैं। शत्रुंजय पर्वत को सचमुच ही, पूर्वीय देशों की अद्भुत कथाओं के एक कल्पित पहाड की यथार्थ उपमा दी जा सकती है और उस के अधिवासी मानो एकाएक संगमर्मर के पुतले बन गये हों, परन्तु अप्सरायें आ कर उन्हें अपने हाथों से स्वच्छ और चमकित रखती हों, सुगन्धित पदार्थों के धूप धरती हों तथा अपने सुस्वर द्वारा देवों के शृंगारिक गीत गा कर हवा को गान से भरती हों; ऐसा आभास होता है।"

पर्वत पर नौ या दश टोंक हैं। प्रत्येक टोंक में छोटे बडे सेंकडों मन्दिर बने हुए हैं। यदि इन मन्दिरों का पूरा पूरा हाल लिखा जाय तो एक बहुत ही बडी पुस्तक बन जायें। इतने मन्दिरों का वृत्तान्त लिखना तो बडी बात है गिनती भी करना कठिन है। हम यहां पर संक्षेप में केवल नौ टोंकों का उल्लेख कर देते हैं।

१ चौमुखजी की टोंक।

यह टोंक दो विभागों में बंटी हुई है। बहार के विभाग को '**खरतर–वसही**' और अन्दर के को '**चौमुख–वसही**' कहते हैं। यह टोंक पर्वत के सब से ऊँचे भाग पर बनी हुई है। '**चौमुख–वसही**'

के मध्य में आदिनाथ भगवान् का चतुर्मुख प्रासाद (मन्दिर) है। यह प्रासाद क्या है मानो एक बडा भारी गढ है। इस की लम्बाई ६३ फुट और चौडाइ ५७ फुट है। इस का गुम्बज ९६ फुट ऊँचा है। मन्दिर के पूर्व मण्डप है, जिस के पश्चिम ३१ फुट लम्बा और इतना ही चौडा एक कमरा है। इस कमरे के दोनों बगलों में चबूतरे पर एक एक द्वार बना हुआ है। मध्यमें १२ स्तंभ लगे हैं। इस की छत गौल–गुम्बजदार है। कमरे में हो कर गर्भागार में, जो २३ फूट लम्बा और उतनाही चौडा है, जाया जाता है। इस में मूर्ति के सिंहासन के कोनों के पास ४ विचित्र खम्भे लगे हैं। फर्श से ५६ फुट ऊँचा मूर्तिके बैठने का स्थान है। चारों ओर ४ बडे बडे द्वार हैं। गर्भागार की दिवार जिस पर मूर्तियें विराजमान है, बहुत ही मोटी है। उस में अनेक छोटी छोटी कोठरियां बनी हुई हैं। फर्श में नील, श्वेत तथा भूरे रंग के सुन्दर संगमर्मर के टूकडे जडे हुए हैं। गर्भागारमें २ फुट ऊंचा, १२ फुट लम्बा और उतना ही चौडा श्वेत संगमर्मर का सिंहासन बना हुआ है। सिंहासन पर श्वेत ही संगमर्मर की बनी हुई १० फुट ऊँची **आदिनाथ** भगवान् की ४ मनोहर मूर्त्तियें पद्मासनासीन हैं। गर्भागार में के चारों ओर के द्वारों में से प्रतिद्वार की ओर एक एक मूर्तिका मुख है इस लिये यह मन्दिर ' **चौमुखवसही** ' के नाम से प्रसिद्ध है। यह मन्दिर, एक तो पर्वत के ऊंचे भाग पर होने से और दूसरा स्वयं बहुत ऊँचा होने से, आकाश के स्वच्छ होने पर २५–३० कोस की दूरी पर से दर्शकों को दिखलाई देता है। इस टोंक को **अहमदाबाद** के सेठ **सोमजी सवाई** ने संवत् १६७५ में बनाया है। ' मीराते–अहमदी ' में लिखा है कि इस मन्दिर के बनवाने में ५८ लाख रुपये लगे थे! लोग कहते हैं कि केवल ८४००० रुपयों की तो रस्सियां ही इस में काम में आई थीं!!

२ छीपावसही की टोंक।

यह टोंक छोटी ही है। इस में ३ बडे बडे मन्दिर और ४ छोटी छोटी देहरियां हैं। इसे छीपा (भावसार) लोगों नें बनाई है इस लिये यह 'छीपावसही' कही जाती है। इस का निर्माण संवत् १७९१ में हुआ है।

इस के पास एक पाण्डवों का मन्दिर है जिस में पांचों पाण्डवों की, द्रौपदी की और कुन्ती की मूर्तियां स्थापित हैं। जैनधर्म में पाण्डवों का जैन होना और उन का इस पर्वत पर मोक्ष जाना माना गया है। इस लिये जैनप्रजा उन की मूर्तियों की भी अपने तीर्थंकरों की समान पूजा करती है।

३ साकरचंद प्रेमचंद की टोंक।

इस को अहमदाबाद के सेठ साकरचंद प्रेमचंद ने संवत् १८९३ में बनाया है। इस का नाम सेठ के नामानुसार 'साकर-वसही' ऐसा रक्खा गया है। इस में तीन बडे मन्दिर और बाकी बहुत सी छोटी छोटी देहरियां हैं।

४ उजमबाई की टोंक।

अहमदाबाद के प्रख्यात नगरसेठ प्रेमाभाई की फूफी उजमबाई ने इस टोंक की रचना की है। इस कारण इस का नाम 'उजमवसही' है। इस में नन्दीश्वरद्वीप की अद्भुत रचना की गई है। भूतलपर छोटे छोटे ५७ पर्वत–शिखर संगमर्मर के बनाये गये हैं और उन प्रत्येक पर चौमुख प्रतिमायें स्थापित की हैं। इन शिखरों की चोतरफ सुन्दर कारीगरी वाली जाली लगाई गई है। इस मन्दिर के सिवा और भी अनेक मन्दिर इस में बने हुए हैं।

५ हेमाभाई सेठ की टोंक।

इस को अहमदाबाद के नगरसेठ हेमाभाई ने संवत् १८८२ में बनाया है और ८६ में प्रतिष्ठित किया है। इस में ४ बडे मन्दिर और ४३ देहरियां हैं।

६ प्रेमचंद मोदीकी टोंक।

अहमदाबाद के धनिक मोदी प्रेमचंद सेठ ने शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने के लिये एक बडा भारी संघ निकाला था। तीर्थ की यात्रा किये बाद उन का दिल भी यहां पर मन्दिर बनाने का हो गया। लाखों रुपये खर्च कर यह टोंक बनाई और इस की प्रतिष्ठा करवाई। इस में छ बडे मन्दिर और ५१ देहरियां बनी हुई हैं। इस सेठ ने अपनी अगणित दौलत धर्म कार्य में खर्च की थी। कर्नल टॉड साहब ने अपने पश्चिमभारत के प्रवासवर्णन में लिखा है कि " मोदी प्रेमचन्द की दौलत का कुछ ठिकाना नहीं था। उस की कीर्तिने सम्प्रति जैसे प्रतापी और उदार राजा की कीर्ति को भी ढांक दी है। "

७ बालाभाई की टोंक।

घोघा–बन्दर के रहने वाले सेठ दीपचंद कल्याणजी, जिन का बचपन का नाम बालाभाई था, ने लाखों रुपये व्यय कर संवत् १८९३ में इस टोंक को बनाया है। इस में छोटे बडे अनेक मन्दिर अपने उन्नत शिखरों से आकाश की साथ बात कर रहे हैं।

इस टोंक के ऊपर के सिरे पर एक मन्दिर है जो ' अद्भुत ' मन्दिर कहा जाता हैं। इस में, आदिनाथ भगवान् की, पांच सौ धनुष जितने विशाल शरीरमान का अनुकरण करने वाली मूर्ति है। यह पर्वत ही में से उकीरी गई है। यह प्रतिमा १८ फूट ऊँची है। एक घुटने से दूसरे घुटने तक १४॥ फुट चौडी है। संवत् १६८६ में धरमदास सेठ

ने इस की अंजनशलाका करवाई है । इस की वर्ष भर में एक ही बार, बैशाख सुदि ६ के दिन, पूजा की जाती है जो शत्रुंजय के अन्तिम उद्धार का (जिस का ही मुख्य वर्णन इस पुस्तक में किया गया है) वार्षिक दिन गिना जाता है । बहुत से अज्ञान लोग इसे भीम की मूर्ति समझ कर पूजा करते हैं । यहां पर खडे रह कर पर्वत के शिखर पर नजर ड़ालने से, सब ही मन्दिर मानो पवन से फरकते हुए अपने ध्वजरूप हाथों द्वारा आकाश में संचरण करने वाले अदृश्य देवों को तथा ज्योतिषों को, अपने गर्भ में विराजमान् अर्हद्‌बिम्बों को पूजने के लिंये आह्वान कर रहे हैं, ऐसा आभास होता है ।

८ मोतीसाह सेठ की टोंक ।

७५ वर्ष पहले बंबई में **मोतीसाह** नाम के सेठ बडे भारी व्यापारी और धनवान् श्रावक हो गये हैं । इन्हों ने चीन, जापान आदि दूर दूरके देशों के साथ व्यापार चलाकर अखूट धन प्राप्त किया था । ये एक दफे शत्रुंजय की यात्रा कर ने के लिये संघ निकाल कर आये । उस समय अहमदाबाद के प्रख्यात सेठ हठीभाई भी वहां पर आये हुए थे । शत्रुंजय के दोनों शिखरों के मध्य में एक बडी भारी और गहरी खाई थी । इसे ' कुन्तासर की खाड ' कहा करते थे । मोतीसाह सेठ ने अपने मित्र सेठ हठीभाई से कहा कि ' गिरिराज के दोनों शिखर तो मन्दिरों से भूषित हो रहे हैं परंतु यह मध्यकी खाई, दर्शकों की दृष्टि में अपनी भयंकरता के कारण, आंख में कंकर की तरह खटके करती है । मेरा विचार है कि इसे पूर कर, ऊपर एक टोंक बनवा दूं । " यह सुन कर हठीभाई सेठ ने कहा " पूर्वकाल में जो बडे बडे राजा और महामात्य हो गये हैं वे भी इस की पूर्ति न कर सके तो फिर तुम इस पर टोंक कैसे बना सकते हो ? " मोतीसाह सेठ ने हँस कर जवाब दिया कि

"धर्म प्रभाव से मेरा इतना सामर्थ्य है कि पत्थर से तो क्या परन्तु सीसे की पाटों से और सक्कर के थेलों से इस खाई को मैं पूरा सकता हूं!" बस यह कह कर सेठ ने उसी दिन, वहां पर टोंक बांधने के लिये संघ से इजाजत ले ली और खड्डा के पूर्ण करने का प्रारंभ कर दिया। थोडे ही दिनों में उस भीषण गर्त को पूर्ण कर ऊपर सुंदर टोंक बनाना आरंभ किया। लाखों रुपयों की लागत का बहुत ही भव्य और साक्षात् देवविमान के जैसा मन्दिर तैयार करवाया। इस मन्दिर की चारों ओर सेठ हठीभाई, दीवान अमरचन्द दमणी, मामा प्रतापमल्ल आदि प्रसिद्ध धनिकों ने अपने अपने मन्दिर बनवाये। सब मन्दिरों के इर्द गीर्द पत्थर का मजबूत किला करवाया। मन्दिरों का कार्य पूरा होने पाया था कि इतने में सेठजी का देहान्त हो गया। इस से उन के सुपुत्र सेठ खीमचन्द ने, बडा भारी संघ निकाल कर, शत्रुंजय की यात्रा के साथ इस रमणीय टोंक की संवत् १८९३ में प्रतिष्ठा करवाई। यह संघ बहुत ही बडा था। इसमें ५२ गावों के और संघ आकर मिले थे और उन सब का संघपतित्व खीमचंद सेठ को प्राप्त हुआ था! कहा जाता है कि इस टोंक के बनाने में एक करोड से भी अधिक खर्च हुआ था! इस में कोई १६ तो बडे बडे मन्दिर हैं और सवा सौ के करीब दहेरियां हैं। जहां ७०-८० वर्ष पहले भयंकर गर्त अपनी भीषणता के कारण यात्रियों के दिल में भय पैदा करता था वहां पर आज देवविमान जैसे सुन्दर मन्दिरों को देख कर दर्शकों के हर्ष का पार भी नहीं रहता। सचमुच ही संसार में समर्थ मनुष्य क्या नहीं कर दिखा था?

९ आदीश्वर भगवान् की टोंक।

शत्रुंजयगिरि के दूसरे शिखर पर आदीश्वर भगवान की टोंक बनी हुई है। यह टोंक सबसे बडी है। इस अकेली ने ही पर्वत का सारा दूसरा शिखर रोक रक्खा है। इस तीर्थ की जो इतनी महिमा है वह इसी

कारण है। तीर्थपति आदिनाथ भगवान् का ऐतिहासिक और दर्शनीय मन्दिर इसी के बीचमें है। बडे कोट के दरवाजे में प्रवेश करते ही एक सीधा राजमार्ग जैसा फर्शबन्ध रास्ता दृष्टिगोचर होता है जिस की दोनों ओर पंक्तिबद्ध सैंकडों मन्दिर अपनी विशालता, भव्यता और उच्चता के कारण दर्शकों के दिल एकदम अपनी ओर आकृष्ट करते हैं जिस से देखने वाला क्षणभर मुग्ध हो कर मन्दिरों में विराजित मूर्तियों की तरह स्थिर-स्तंभित सा हो जाता है। जिस मन्दिर पर दृष्टि डालो वही अनुपम मालूम देता है। किसी की कारीगरी, किसी की रचना, किसी की विशालता और किसी की उच्चता को देख कर यात्रियों के मुंहसे ओ हो! ओ हो! की ध्वनियाँ निकले करती हैं। महाराज **सम्प्रति**, महाराज **कुमारपाल**, महामात्य **वस्तुपाल-तेजपाल**, **पेथडसाह**, **समरासाह** आदि प्रसिद्ध पुरुषों के बनाये हुए महान् मन्दिर इन्हीं श्रेणियों में सुशोभित हैं।

सर्व साधारण इन मन्दिरों को देख कर जिस तरह आनन्दित होता है वैसे प्राचीन सत्यों को ढूंढ निकालने में अति आतुर ऐसी पुरातत्त्व-वेत्ता की आन्तर दृष्टि में आनन्द का आवेश नहीं आकर नैराश्य की निश्चलता दिखाई देती है, यह जान कर अवश्य ही खेद होता है। यद्यपि ये मन्दिर अपनी सुन्दरता के कारण सर्व श्रेष्ठ हैं तो भी इनमें की प्राचीन भारत की आदर्श भूत शिल्पकला का बहुत कुछ विकृतरूप में परिणत हो जाने के कारण भारतभक्त के दिल में आनन्द के साथ उद्वेग आ खडा होता है। कारण यह है कि यहां पर जितने पुराणे मन्दिर हैं उन सब का अनेक वार पुनरुद्धार-संस्कार हो गया है। उद्धार कर्ताओं ने उद्धार करते समय, प्राचीन कारीगरी, कमानें और शिलालेखों आदि की रक्षा तरफ बिलकुल ही ख्याल न रक्खा। इस कारण, पुरातत्त्वज्ञ की दृष्टि में, इन में कौन सा भाग नया है और कौन सा पुराणा

है, यह नहीं ज्ञात होता। संसार के शिक्षितों का यह अब निश्चय हो गया है कि भारत की भूतकालीन विभुता का विशेष परिचय, केवल उस के प्राचीन धुस्स और पत्थर के टुकडे ही करा सकते हैं। ऐसी दशामें, उन की अवज्ञा देख कर किस वैज्ञानिक को दुःख नहीं होता *।

* **कर्नल टॉड** यहां की प्राचीनता के विलोप में एक और भी कारण बडे दुःख के साथ लिखते हैं। वे कहते हैं—"(इस पर्वत की) प्राचीनता और पवित्रता के विषय में जो कुछ ख्याति है वह सब इसी (बडी) टोंक की है। परन्तु पारस्परिक द्वेष के कारण, आप आप को स्थापक प्रसिद्ध करने की तीव्र लालसा के कारण और एक प्रकार की धर्मान्धता के कारण लोगों ने यहां की प्राचीनता को बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर डाला है। मैं ने यहां के विद्वान् जैन साधुओं के मुंह से सुना है कि श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के खरतरगच्छ और तपागच्छ नामक मुख्य दो पक्षों ने यहां के पुराने चिह्नों को नष्ट करने में वह कार्य किया है जो मुसलमानों से भी नहीं हुआ है! जिस समय तपागच्छ वालों का जोर हुआ उस समय उन्हों ने खरतरगच्छ के शिलालेखों को नष्ट कर दिया और उन के स्थान में अपने नवीन शिलालेख जड दिये, इसी तरह × × जब खरतरगच्छ का जोर हुआ तब उन्हों ने उन के लेखों को भी नष्ट भ्रष्ट कर डाला। फल इस का यह हुआ कि इस पर्वत पर एक भी सम्पूर्ण मन्दिर ऐसा नहीं है जो अपनी प्राचीनता का दावा कर सके। सब ही मन्दिर ऐसे हैं जो या तो नये सिरेसे बनवाये गये हैं या मरम्मत किये हुए हैं या उन में फेरफार किया गया है।" (जैनहितैषी, भाग ८, संख्या १०।)

भारतहितैषी इस सज्जन पुरुष के कथन में बहुत कुछ सत्यता है, ऐसा मैं अपने अन्यान्य अनुभवों से कह सकता हूं। पाटन वगैरह स्थलों के पुस्तक भाण्डागारों के अवलोकन करते समय ऐसी अनेक पुस्तकें मेरे दृष्टिगोचर हुईं जिन के अन्त की लेखक-प्रशस्तियों में, एक दूसरे गच्छवालों ने, हरताल लगा लगा कर रद्दोबदल कर दिया है या उन का सर्वथा नाश ही कर डाला है। ऐसा ही निन्द्य कृत्य, संकुचित विचार वाले क्षुद्र मनुष्यों द्वारा, टाड साहब के कथनानुसार, शिलालेखों के विषय में भी किया गया हो तो उस में आश्चर्य नहीं। चाहे कुछ भी हो, परन्तु इतना तो सत्य है कि, शत्रुंजय के मन्दिरों की ओर देखते, उन की प्राचीनता सिद्ध करने वाले प्रामाणिक साधन हमारे लिये बहुत कम मिलते हैं। और यह ऐतिहासिक साधनाभाव थोडा खेद कारक नहीं है।

मन्दिरों की श्रेणियों के मध्य में चलते चलते यात्रियों को **'हाथीपोल'** नामका बडा दरवाजा मिलता है। जिस में सदैव सशस्त्र पहारेदार खडे रहते हैं। इस दरवाजे से सामने नजर करते ही वह पूज्य, पवित्र और दर्शनीय मन्दिर दृष्टिगोचर होता है जिस का चित्र इस पुस्तक के प्रारंभ में ही पाठकों नें देखा है। यही महान् मन्दिर इस तीर्थ का मुकुट-मणि है। इसी में **तीर्थपति आदिनाथ भगवान्** की भव्य मूर्ति विराजमान् है। इसी मन्दिर के दर्शन, वन्दन और पूजन करने के लिये, भारत के प्रत्येक कौने में से श्रद्धालु जैन उस प्राचीन काल से चले आ रहें हैं जिस का हमें ठीक ठीक ज्ञान भी नहीं है।

* * * *

मुख्य मन्दिर का इतिहास।

इस तीर्थ पर, जैसा कि शत्रुंजयमाहात्म्यानुसार उपर लिखा गया है, सब से पहले भरत चक्रवर्तीने अपने पिता श्रीआदिनाथ तीर्थंकर का मन्दिर बनवाया था। पीछे से उसी का उद्धार अनेक देव-मनुष्यों ने किया। ऐसे १२ उद्धारों का, जो चौथे आरे में किये गये हैं, ऊपर उल्लेख हो चुका है। शत्रुंजयमाहात्म्यकार ने, भगवान् महावीर के निर्वाण बाद के भी दो उद्धारों का उल्लेख किया है जो ऊपर उल्लिखित हो चुके हैं। **धर्मघोषसूरि** ने अपने प्राकृत ' कल्प ' में, सम्प्रति, विक्रम और शातवाहन राजा को भी इस गिरिवर का उद्धारक बताया है * परन्तु इन की सत्यता के लिये अभी तक और कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिले।

---

* **संपइ-विक्कम-बाहड-हाल-पालित्त-दत्तरायाइ।**
जं उद्धारिहांति तयं सिरि सत्तुंजयं महातित्थं॥

बाहड मंत्री का उद्धार।

वर्तमान में जो मुख्य मन्दिर है और जिस का चित्र इस पुस्तक के प्रारंभ में लगा हुआ है वह, विश्वस्त प्रमाणों से जाना जाता है कि गुर्जर महामात्य **बाहड** (संस्कृत में **वाग्भट**) मंत्री के द्वारा उध्दृत है। **विक्रम** की तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में, जब चौलुक्य चक्रवर्ती महाराज **कुमार-पाल** राज्य कर रहे थे तब, उन के उक्त प्रधान ने, अपने पिता **उदयन** मंत्री की इच्छानुसार, इस मन्दिर को बनवाया है । **प्रबन्धचिन्तामणि*** नामक ऐतिहासिक ग्रंथ के कर्ता **मेरुतुङ्गसूरि** ने इस उद्धार के प्रबन्ध में लिखा है कि—

सौराष्ट्र (काठियावाड) के किसी **सुंवर** नामक **माण्डलिक** शत्रु को जीतने के लिये महाराज कुमारपाल ने अपने अमात्य उदयनमंत्री को बहुत सी सेना दे कर भेजा । **बढवान** शहर के पास जब मंत्री पहुंचा तब **शत्रुंजयगिरि** को नजदीक रहा हुआ समझ कर, सैन्य को तो आगे काठियावाड में रवाना किया और आप गिरिराज की यात्रा के लिये शत्रुंजय की ओर रवाना हुआ । शीघ्रता के साथ शत्रुंजय पहुंचा और वहां पर भगवत्प्रतिमा का दर्शन, वन्दन और पूजन किया । उस समय वह मन्दिर पत्थर का नहीं बना हुआ था परन्तु लकडी का बना था × । मन्दिर की अवस्था बहुत जीर्ण थी । उस में अनेक जगह

---

* यह ग्रन्थ विक्रम संवत् १३६१ के फाल्गुन सुदि १५ रविवार के दिन समाप्त हुआ है । गुजरात के इतिहास में इस से बडी पूर्ति हुई है । इस का अंग्रेजी अनुवाद, बंगाल की रॉयल एसियाटिक सोसायटि ने प्रकाशित किया है ।

× गुजरात में पूर्वकाल में बहुत कर के लकडी ही के मकान बनाये जाते थे। इस का निर्णय इस वृत्तान्त से स्पष्ट हो जाता है । गुजरात की प्राचीन राजधानी **वल्लभी** नगरी के ध्वंसावशेषों में पत्थर का काम कुछ भी उपलब्ध नहीं होता इस लिये पुरातत्त्वज्ञों का अनुमान है कि इस देश में पहले लकडी और ईंट ही के मकान बनाये जाते थे ।

फाट–फूट हो गई थी। मंत्री पूजन कर के प्रभु–प्रार्थना करने के लिये रङ्गमण्डप में बैठा और एकाग्रता के साथ स्तवना करने लगा। इतने में मन्दिर की किसी एक फाट में से एक चूहा निकला और वह दीपक की बत्ती को मुंह में पकड कर पीछा कहीं चला गया। मंत्री ने यह देख कर सोचा, कि मन्दिर काष्ठमय हो कर बहुत जीर्ण है इस लिये यदि दीपक की बत्तीसे कभी अग्नि लग जायँ तो तीर्थ की बडी भारी आ-शातना के हो जाने का भय है। मेरी इतनी सम्पत्ति और प्रभुता किस काम की है। यह सोच कर वहीं मंत्री ने प्रतिज्ञा कर ली की इस युद्ध से वापस लौट कर मैं इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करूंगा और लकडी के स्थान में पत्थर का मजबूत मन्दिर बनाऊंगा। मंत्री वहां से चला और थोडे ही दिनों में अपने सैन्य से जा मिला। शत्रु के साथ खूब लडाई हुई। उस में मंत्री ने बडी वीरता दिखलाई और शत्रु का पूर्ण संहार किया। परन्तु, मंत्री को कई सख्त प्रहार लगे जिस से वह वहीं पर स्वधाम को पहुंच गया। मंत्री ने अन्तसमय में, अपने सेनानियों को कहा ‘ कि मैं अपने स्वामी का कर्तव्य बजा कर जाता हूं इस से मुझे बडा हर्ष है परन्तु शत्रुंजय के उद्धार की जो मैंने प्रतिज्ञा की है वह पूरी नहीं कर सका इस कारण मुझे बडा दुःख होता है। खैर, भवितव्यता के कारण मैं अपने हाथ से यह सुकृत्य नहीं कर सका परन्तु मुझे विश्वास है कि मेरे पितावत्सल प्रिय पुत्र अवश्य ही मेरी इच्छा को पूर्ण करने में तत्पर होंगे इस लिये मेरा यह अन्तिम सन्देश उन से तुमने कह देना।’ मंत्री के वचन को सेनानियों ने मस्तक पर चढाया। मंत्री का अग्नि-संस्कार कर उस का विजयी सैन्य, विजय मिलने के कारण हर्षित होता हुआ परन्तु अपने प्रिय दण्डनायक की दुःखद मृत्यु के कारण दुःखी हो कर वापस राजधानी पट्टन को पहुंचा। सेनानियों ने, मंत्री के बाहड और अम्बड नामक पुत्रों को, पिता का अन्तिम सन्देश कहा। दोनों

भ्राताओं ने पिता के इस पवित्र सन्देश को बडे आदर के साथ शिरोधार्य किया और उसी समय शत्रुंजय के उद्धार की तैयारी करने लगे। दो वर्ष में मन्दिर तैयार हो गया। उस की शुभ खबर आ कर नौकर ने दी और बधाई मांगी । मंत्री बाहड ने उसे इच्छित दान दिया। फिर मंत्री प्रतिष्ठा की सामग्री तैयार करने लगा। कुछ ही दिन बाद एक आदमी ने आकर यह सुनाया कि पवन के सख्त झपाटों के कारण मन्दिर मध्यमें से फट गया है। यह सुन कर मंत्री बडा खिन्न हुआ और महाराज कुमारपाल की आज्ञा पा कर चार हजार घोडेसवारों को साथ में ले स्वयं शत्रुंजय को पहुंचा । वहां जा कर कारीगरों से फट जाने का कारण पूछा तो उन्हों ने कहा कि 'मन्दिर के अन्दर जो प्रदक्षिणा देने के लिये 'भ्रमणमार्ग' बनाया गया है उस में जोरदार हवा का प्रवेश हो जाने से, मध्य भाग फट गया है। और यदि यह 'भ्रमणमार्ग' न बनाया जाय तो शिल्पशास्त्र में निर्माता को सन्तति का अभाव होना लिखा है।' मंत्री ने कहा 'चाहे भले ही मुझे सन्तति न हो परन्तु मन्दिर वैसा बनाओ जिस से कभी तूटने–फटने का भय ही न रहे।' शिल्पियों ने अपनी बुद्धिमत्ता से मन्दिर के 'भ्रमणमार्ग' पर शिलायें लगा कर ऐसा बना दिया जिस से न वह किसी तूफान ही का भोग हो सकता है और न सन्तत्यभाव ही का कारण। (कहते हैं कि ये शिलायें अद्यावधि वैसी ही लगी हुई हैं।) इस प्रकार तीन वर्ष में मन्दिर तैयार हो गया। बाद में मंत्री ने पट्टन से बडा भारी संघ निकाला और बहुत धन व्यय कर, सुप्रसिद्ध आचार्य **श्रीहेमचंद्रसूरि** से संवत् १२११+ में अनुपम प्रतिष्ठा करवाई। **मेरुतुङ्गाचार्य** लिखते हैं

\+ प्रभावक चरित्र में संवत् १२१३ लिखा है–

शिखीन्दु रविवर्षे (१२१३) च ध्वजारोपे व्यधापयत्।
प्रतिमां सप्रतिष्ठां स श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः ॥

कि—इस मन्दिर के बनवाने में बाहड मंत्री ने एक करोड और ६० लाख रुपये खर्च किये हैं।

षष्टिलक्षयुता कोटी व्ययिता यत्र मन्दिरे।
स श्री वाग्भटदेवोऽत्र वर्ण्यते विबुधैः कथम् ॥

मन्दिर की व्यवस्था और निभाव के लिये मंत्रीने कितनी ही जमीन और ग्राम भी देव–दान में दिये कि जिनकी ऊपज से तीर्थ का सदैव का कार्य नियम पुरःसर चलता रहे।

समरासाह का उद्धार।

बाहड मंत्री के थोडे ही वर्षों बाद शाहबुद्दीन घोरी ने उद्वेगजनक हमले शुरू किये। दीलीश्वर पृथ्वीराज चाहमान का पराजय कर उस ने भारत के भाग्याकाश में विपत्ति के बादलों की भयानक घटा के आने का दुर्भेद्य द्वार खोल दिया। बस, फिर क्या होना था?—सावन और भादों के मेघों की तरह एक से एक त्रासजनक और विप्लवकारी म्लेच्छों के आक्रमण होने लगे जिस से भारतीय स्वतंत्रता और सभ्यता का सर्व-नाश होने लगा। १४ वीं शताब्दी के मध्यमें अत्याचारी अलाउद्दीन का आसुरी अवतार हुआ। उसने आर्यावर्त के आदर्श और अनुपम ऐसे असंख्य देवमन्दिरों का, जिन के कारण स्वर्ग के देव भी इस पुण्य-भूमि में जन्म लेने की वांछा किये करते थे, नाश करना प्रारंभ किया। जिन की रमणीयता की बराबरी स्वर्ग के विमान भी नहीं कर सकते वैसे हजारों मन्दिरों को धूल में मिला दिये गये। जिन भव्य और शान्तस्वरूप प्रतिमाओं को एक ही वार प्रशान्त मनसे देख लेने पर पापीष्ठ आत्मा भी पवित्र हो जाता था वैसी असंख्य देवमूर्तियों को, उन के पूजकों के हृदयों के साथ, विदीर्ण कर दिया। हाय! इस आपत्काल के पहले

भारतभूमि जिन भव्य भवनों से सुशोभित थी उन की विभुताकी हमें आज कल्पना भी होनी कठिन है ! उस असुर के अधम अनुजीवियों ने शत्रुंजयतीर्थ को भी अस्पृष्ट और अखण्डित नहीं रहने दिया। तीर्थपति आदिनाथ भगवान् की पूज्य प्रतिमा का कण्ठच्छेद कर दिया और महाभाग मंत्री बाहड के उध्दृत मन्दिर के कितने ही भागों को खण्डित कर डाला। **जिनप्रभसूरि** ने, जो उस समय विद्यमान थे, अपने **विविधतीर्थकल्प** में, इस दुर्घटना की मीति संवत् १३६९ लिखी है* ।

इस समय अणहिल्लपुर (पट्टन) में, ओसवाल जाति के देशलहरा वंश में **समरासाह** नामक बडा समर्थ श्रावक विद्यमान था। उस का परिचय सीधा **दिल्ली** के बादशाह से था । जब उसे यह मालूम हुआ कि मुसलमानों ने शत्रुंजय पर भी उत्पात मचाना शुरू किया है तब वह अलाउद्दीन के पास गया और उसे समझा-बूझा कर शत्रुंजय को विशेष हानि से बचा लिया। बादशाह की रजा ले कर, उस साह ने गिरिराज पर, जितना नुकसान मुसलमानों ने किया था उसे फिर तैयार कर देने का काम शुरू किया। बादशाह के आधीन में **मम्माण**+ की संगमर्मर

---

* **ही ग्रहर्तुकियास्थान(१३६९)सङ्ख्ये विक्रमवत्सरे ।**
जावडिस्थापितं बिम्बं म्लेच्छैर्भग्नं कलेर्वशात् ॥

इस के उत्तरार्द्ध में यह लिखा है कि मुसलमानो ने जिस बिम्ब को भग्न किया वह **जावडसाह** वाला था। तो, इस से यह बात जानी जाती है कि **बाहड मंत्री** ने केवल मन्दिर ही नया बनाया था-मूर्ति नहीं। मूर्ति तो वही स्थापन की थी जो **जावडसाह** ने प्रतिष्ठित की थी।

+ यह '**मम्माण**' कहां पर है इस का कुछ पता नहीं लगा। पिछले जमाने में जितनी अच्छी जिनमूर्तियें बनाई जाती थी वे प्राय: **मम्माण** के मार्बुल की होती थी। जैनग्रन्थों में, **आरास** (आबू के पास) और **मम्माण** की खानों में के संगमर्मर का बहुत उल्लेख मिलता है।

की खानें थी जिन में बहुत ऊंची जाति का पत्थर निकलता था। **समरा साह** ने वहां से पत्थर लेने की इजाजत मांगी। बादशाह ने खुशी पूर्वक लेने दिया*। कोई दो वर्ष में मूर्ति बन कर तैयार हुई। मन्दिर की भी सब मरम्मत करवाई। संवत् १३७१ में, **समरा साह** ने **पट्टन** से संघ निकाला और गिरिवर पर जाकर भगवन्मूर्ति की फिर से मन्दिर में नई प्रतिष्ठा की†। प्रतिष्ठा में **तपागच्छ** की बृहत्पोशालिक शाखा के आचार्य **श्रीरत्नाकरसूरि** आदि कई प्रभावक आचार्य विद्यमान थे। इस प्रतिष्ठा के समय के कुछ लेख शत्रुंजय पर अब भी विद्यमान हैं। स्वयं समरा साह और उस की स्त्री समरश्री का मूर्ति-युग्म भी मौजूद है‡।

* * * * *

कर्मा साह का उद्धार।

समरासाह की स्थापित की हुई मूर्ति का मुसलमानों ने पीछे से फिर शिर तोड दिया। तदनन्तर बहुत दिनों तक वह मूर्ति वैसे ही—खण्डित रूप में ही—पूजित रही। कारण यह कि मुसलमानों ने नई मूर्ति स्थापन न करने दी। **महमूद** बेगडे के बाद **गुजरात** और **काठियावाड** में मुसलमानों ने प्रजा को बडा कष्ट पहुंचाया था। मन्दिर बनवाने और मूर्ति स्थापित करने की बात तो दूर रही, तीर्थस्थलों पर यात्रियों को दर्शन

---

* महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल ने भी, तत्कालीन बादशाह **मोजुद्दीन** की रजा ले कर **मम्माण** से पत्थर मंगवाया था और उस की मूर्तियें बनवा कर इस पर्वत पर तथा अन्यान्य स्थलों पर स्थापित की थीं।

† वैक्रमे वत्सरे चन्द्रहयाग्नीन्दुमिते सति।
श्रीमूलनायकोद्धारं साधुः श्रीसमरो व्यधात्॥
विविधतीर्थकल्प।

‡ देखो, मेरा **प्राचीनजैनलेखसंग्रह.**

करने के लिये भी जाने नहीं दिया जाता था। यदि कोई बहुत आ-जीजी करता था तो उस के पास से जी भर कर रुपये ले कर, यात्रा करने की रजा दी जाती थी। किसी के पास से ५ रुपये, किसी के पास से १० रुपये और किसी के पास से एक असरफी—इस तरह जैसी आसामी और जैसा मौका देखते वैसी ही लंबी जबान और लंबा हाथ करते थे। बेचारे यात्री बुरी तरह कोसे जाते थे। जिधर देखो उधर ही बडी अंधाधुन्धी मची हुई थी। न कोई अर्ज करता था और न कोई सुन सकता था। कई वर्षों तक ऐसी ही नादिरशाही बनी रही और जैन प्रजा मन ही मन अपने पवित्र तीर्थ की इस दुर्दशा पर आंसु बहाती रही। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, **चित्तोड** की वीरभूमि में **कर्मा साह** नामक कर्मवीर श्रावक का अवतार हुआ जिसने अपने उदग्र वीर्य से इस तीर्थाधिराज का पुनरुद्धार किया। इसी महाभाग के महान् प्रयत्न से यह महातीर्थ मूर्च्छित दशा को त्याग कर फिर जागृतावस्था को धारण करने लगा और दिन प्रतिदिन अधिकाधिक उन्नत होने लगा। फिर, जगद्गुरु **श्रीहीरविजयसूरि** के स[ु]चित सामर्थ्य ने इस की उन्नति की गति में विशेष वेग दिया जिस के कारण यह आज जगत् में "**मन्दिरों का शहर**" (THE CITY OF TEMPLES. *) कहा जा रहा है।

---

* बम्बई के वर्तमान गवर्नर लॉर्ड वेलिंग्डनने गत वर्ष में काठियावाड की मुसाफरी करते समय शत्रुंजय की भी यात्रा की थी। उन की इस यात्रा का मनहर वृत्तान्त 'टाईम्स ऑव इन्डिया' के तारीख १४ फेब्रुआरी (सन् १९१६) के अंक में छपा है। इस वृत्तान्त का शीर्ष, लेखक ने **The Governor's Tour, IN THE CITY OF TEMPLES.** (मन्दिरों के शहर में गवर्नर की मुसाफरी) यह किया है और लेख में शहर के सौन्दर्य का चित्राकर्षक वर्णन किया है।

कर्मा साह का उध्दृत किया हुआ मन्दिर और प्रतिष्ठित की गई मूर्ति अद्यावधि जैनप्रजा के आत्मिक कल्याण में सहायभूत हो रही है। प्रतिदिन सेंकडों-हजारों भाविक लोग, इस महान् मन्दिर में विराजित भगवान् की भव्य, प्रशान्त और निर्विकार प्रतिकृति के दर्शन, वन्दन और पूजन कर आत्महित किया करते हैं। कृतज्ञ जैनप्रजा अपने इस तीर्थोद्धारक प्रभावक पुरुष का पुण्यजनक नामस्मरण भी ऊसी प्रेम से करती है जिस तरह **भरतादिक** अन्यान्य महापुरुषों का करती है।

*　　　*　　　*　　　*

इस उद्धारक पुरुष का यश अक्षररूप से जगत् में शक्य जितने समय तक विद्यमान रखने के लिये तथा भावी जैनप्रजा को अपने पूर्व पुरुषों के कल्याणकर कार्यों का अवलोकन और अनुमोदन कराने के लिये, पण्डित **श्रीविवेकधीर गणि** ने अपनी सद्बुद्धि का सदुपयोग कर यह **शत्रुंजयतीर्थोद्धारप्रबन्ध** बनाया है। इस प्रबन्ध में लेखक ने, **कर्मा साह** का और उन के उद्धार का सब हाल स्पष्ट रूप से लिखा है। प्रबन्धकार, उद्धार के समय विद्यमान ही न थे परंतु उद्धार सम्बन्धी सब उचित व्यवस्था ही उन के हाथ में थी। इस लिये ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रबन्ध बडे ही महत्त्वका है। **पं. विवेकधीर गणि** कौन और किस गच्छ के यति थे ; इस विषय का का सविस्तर जिक्र इस प्रबन्ध ही में किया हुआ है इस लिये यहां पर ऊहापोह करने की अपेक्षा नहीं रहती। हां, इस प्रबन्ध के सिवा इन्हों ने और भी कोई ग्रंथरचना वगैरह की है या नहीं ? इस के उल्लेख करने की आवश्यकता अवश्य रहती है। परंतु, मुझे अपनी शोध-खोल में, अभी तक इस विषय में, इस से अधिक और कुछ भी नहीं मालूम हुआ।

इस प्रबन्ध के दूसरे उल्लास के ८४ वें श्लोक का अवलोकन करने

से ज्ञात होता है की **विवेकधीर गणि** शास्त्रीय विद्याओं के तो पण्डित थे ही परन्तु शिल्पविद्या में भी पूर्ण निपुण थे। शत्रुंजय के उद्धारकार्य में **कर्मा साह** ने जिन हजारों शिल्पियों (कारीगरों) को नियुक्त किया था उन सब को निर्माणकार्य में समुचित शिक्षा देने वाले के स्थान पर, **विवेकधीर गणि** ही को, इन के गुरु (आचार्य) ने अध्यक्ष (इञ्जिनियर) नियत किया था! इन के बडे गुरुभ्राता **विवेकमण्डन पाठक** भी इस कार्य में सहकारी थे। पूर्वकाल में जैन विद्वान् कैसे विद्यावान् और सर्वकलाकुशल होते थे इस का खयाल इस कथन से अच्छी तरह हो सकता है×। जैनयतियों के लिये सावद्यकर्म के करने--कराने का यद्यपि जैनशास्त्र निषेध करते हैं तथापि संघ की शुभेच्छा और शान्ति के लिये कभी कभी उन्हें वैसे निषिद्ध कर्तव्यों के करने की भी शास्त्रकारों ने आपवादिकी आज्ञा दी है। वास्तुशास्त्र के कथनानुसार, यदि किसी देवमन्दिर की रचना दोष युक्त हो जाय तो उस का अनिष्ट फल बनाने वाले को, उस के पूजकों को, ग्रामवासियों को अथवा उस से भी अधिक सम्पूर्ण देशवासियों को भुगतना पडता है। इस आर्य शास्त्रानुज्ञा के कारण, संघ और राष्ट्र की भलाई के निमित्त, **पं. विवेकधीर गणि** को, शिल्पशास्त्र में उन की अप्रतिम निपुणता देख कर, उन के धर्माचार्य ने, जैनधर्म के इस महान् तीर्थ के उद्धारकार्य में, निरीक्षक तया नियुक्त किये थे। आचार्यवर्य की इस योग्यनियुक्ति का और **विवेकधीर गणि** की सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति का सुफल जैनप्रजा आज तक यथायोग्य भोग रही है।

× वर्तमान में भी पाटन के तपागच्छ के वृद्ध यति श्रीहिमतविजयजी शिल्पशास्त्र के अद्वितीय ज्ञाता हैं। सारे राजपूताना में और गुजरात तथा काठियावाड में उन के जैसा कोई शिल्पज्ञ नहीं है। डॉ. हर्मन जेकोबी इन की इस विषय की निपुणता देख कर बडे प्रसन्न हुए थे। खेद होता है कि इन के बाद इस विषय के उत्तम ज्ञाता का एक प्रकार से अभाव ही हो जायगा।

कर्मा साह के इस उद्धार के वर्णन की एक लंबी प्रशस्ति, इस महान् मन्दिर के अग्रिम द्वार पर, एक शिलापट्ट में ऊकीरी हुई है। यह प्रशस्ति कविवर **लावण्यसमय** की बनाई हुई और इस प्रबन्धकर्ता के हाथ ही की लिखी हुई है। इस में, बहुत ही संक्षेप में, इस उद्धार का वर्णन लिखा हुआ है। प्रशस्ति के सिवा, भगवान **आदिनाथ** की और गणधर **पुण्डरीक** की मूर्ति पर भी **कर्मा साह** के संक्षिप्त गद्य–लेख हैं। ये सब लेख परिशिष्ट में दिये गये हैं।

जो पाठक संस्कृत नहीं जानते अथवा जिन्हें केवल प्रबन्धान्तर्गत ऐतिहासिक भाग ही देखने की इच्छा हो उन के लिये इस 'उपोद्‌घात' के अगले ही पृष्ठ से '**शत्रुंजयतीर्थोद्धार प्रबन्ध का ऐतिहासिक सार–भाग**' दिया गया है। इस सार–भाग में यथास्थान कुछ टिप्पणी भी अन्यान्य ऐतिहासिक ग्रन्थों के अनुसार लगा दी है। दूसरे उल्लास के प्रारंभ में अणहिल्लपुर स्थापक वनराज चावडे से ले कर शत्रुंजयोद्धारक कर्मा साह तक के गुजरात के राजा–बादशाहों की सूची है। उन का विशेष वृत्तान्त जानने के लिये फार्बस साहब की 'रासमाला' या श्रीयुक्त गोविन्दभाई हाथीभाई देशाई रचित 'गुजरातनो प्राचीन अने अर्वाचीन इतिहास' नामक पुस्तक देखनी चाहिए।

प्रबन्ध के अन्त में, स्वयं प्रबन्धकार ने एक '**राजावली-कोष्टक**' दिया है जिस में द्वितीय उल्लासोल्लिखित नृपतियों ने कितने कितने समय तक राज्य किया था उस का कालमान लिखा हुआ है। इस में गुजरात के क्षत्रिय नपतियों का जो कालमान है वह तो अन्यान्य ऐतिहासिक लेखों के साथ सम्बद्ध हो जाता है परन्तु मुसलमान बादशाहों के विषय में कहीं कहीं विसंवाद प्रतीत होता है। सिवा, इस में दिल्ली के बाद-शाहों की भी नामावली और राज्यवर्षगणना दी हुई है परन्तु उन में

के कितने ही नामों का तो कुछ पता ही नहीं लगता है। जिन का पता मिलता है उन में से कई एकों के सत्ता-समय और राज्यकाल में अन्यान्य तवारीखों के साथ कुछ फेरफार और विसंवाद दृष्टिगोचर होता है। परन्तु यह विसंवाद तो आईन-ए-अकबरी और तवारिख-ए-फरिस्ता आदि ग्रन्थों में भी परस्पर बहुत कुछ मिलता है इस लिये इस विषय का परस्पर मिलान कर सत्यासत्य के निर्णय करने का कार्य किसी विशेषज्ञ ऐतिहासिक का है। प्रबन्धकार ने तो सीर्फ पुरानी भूपावली या मुखपरंपरा से देख-सुनकर यह कोष्टक लिखा है; न कि आज कल के विद्वानों की तरह ऐतिहासिक ग्रन्थों की जॉच पडताल कर। तो भी लेख के देखने से ज्ञात होता है कि उन्हें यह लिखा अवश्य विचार पूर्वक हैं।

प्रवर्तक श्रीमान् कान्तिविजयजी महाराज के शास्त्र-संग्रह में की नई लिखी हुई प्रति ऊपर से यह प्रबन्ध छपाने के लिये तैयार किया गया है और भावनगर के जैनसंघ के पुस्तक-भाण्डागार में से सुश्रावक सेठ कुंअरजी आणन्दजी द्वारा प्राप्त हुई प्राचीन प्रति द्वारा शोधा गया है*। आशा है कि इतिहासप्रेमी और धर्मरसिक-दोनों प्रकार के मनुष्यों को इस प्रयत्न में कुछ न कुछ आनन्द अवश्य मिलेगा। और वैसा हुआ तो मैं अपना यह क्षुद्र प्रयास सफल हुआ मानूंगा।

पौषी पूर्णिमा,
(बडौदा।)

मुनि जिनविजय।

* इस प्रति के अन्त में लेखक ने निम्न प्रकारका उल्लेख किया हुआ है—

"संवत् १६५५ वर्षे श्रावण वदि ११ गुरौ महोपाध्याय श्री श्रीविमलहर्ष-गणिचरणसेविजसविजयेनालेखि। श्रीअहम्मदावादे। शुभं भवतु॥"

शत्रुंजयतीर्थोद्धारप्रबन्ध

का
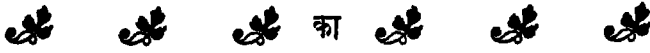
ऐतिहासिक सार-भाग।

वंशादि वर्णन।

(प्रथम उल्लास।)

इस प्रबन्ध के प्रारंभ में, प्रबन्धकार ने प्रथम काव्य में, शत्रुंजयमण्डन **श्रीऋषभदेव** भगवान् की प्रार्थना की है। दूसरे पद्य में भगवान् के प्रथम गणधर **श्रीपुण्डरीक** स्वामी की, जिन के कारण इस पर्वत का '**पुण्डरीक**' नाम प्रसिद्ध हुआ है, स्तवना की गई है। तीसरे काव्य में उल्लेख है कि- इस सिद्धगिरि पर, पूर्वकाल में **भरत**-आदि महापुरुषोंने, तीर्थंकरादि महात्माओं के उपदेश से अनेक उद्धारकार्य किये हैं इस लिये, इस की उपासना करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है यह जान कर, असंख्य श्रद्धालुओं ने संघ निकाल निकाल कर इस की यात्रायें की हैं। चौथे, पाँचवें और छ वें काव्य में भरतादिक जिन जिन उद्धारकों ने ऋषभादिक जिन जिन आप्तपुरुषों के कथन से (जिन की सूची 'उपोद्घात' में दी गई है) इस के उद्धार किये हैं उन का केवल नाम निर्देश किया गया है और *साधु **श्रीकर्मा** के किये

---

* 'साधु' शब्द से यहां पर यति-श्रमण का अभिप्राय नहीं है। संस्कृत में 'साधु' का पर्याय श्रेष्ठ-सुपुरुष है। पूर्व काल में जो अच्छे धर्मी और धनी गृहस्थ होते थे वे 'साधु' कहे जाते थे। 'साधु' ही का प्राकृतरूप 'साहु' है जो अपभ्रंश हो कर साह के रूप में वर्तमान में विद्यमान है। तथा अब भी जो महाजनों को 'साहुकार' कहते हैं वह संस्कृत 'साधुकार' (अच्छा कार्य करने वाला) का प्राकृतिक रूप है।

गये वर्तमान महान् उद्धार का मधुर वर्णन करने की प्रतिज्ञा कर श्रोताओं को सावधान मन से सुनने की विज्ञप्ति की गई है।

सातवें पद्य से प्रबन्ध का प्रारंभ होता है। प्रारंभ, जिन के उपदेश से **कर्मा साह** ने यह उद्धारकार्य किया है उन आचार्यवर्य के वृत्तान्त से किया गया है। आलंकारिक वर्णन को छोड कर (जो कि बहुत ही अल्प है) ऐतिहासिक सार-भाग का सरल भावार्थ यहां पर दिया जाता है।
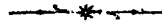
महान् **तपागच्छ** के **रत्नाकरपक्ष** की **भृगुकच्छीय** शाखामें पहले अनेक आचार्य हो गये हैं। उन में **विजयरत्नसूरि** नामके एक प्रतिष्ठित आचार्य हुए जिन्हों ने अपनी प्रखर विद्वत्ता से विद्वानों में सर्वत्र विजयपताका प्राप्त की थी। उन के **धर्मरत्नसूरि** नाम के शिष्य हुए जो बडे क्रियावान्, विद्यावान् और प्रतापी थे। सुविहितजन निरंतर उन की सेवा किया करते थे। उन का निर्मल यश सर्वत्र फैला हुआ था। बचपन ही में उन्हें लक्ष्मीमंत्र सिद्ध हो गया था। कई राजे महाराजे उन के पगों में अपना मस्तक नमाते थे। अनेक अच्छे कवि उन की स्तवना करते थे। उन सूरिवर्य के अनेक अच्छे अच्छे शिष्य थे जिन में **विद्यामण्डन** और **विनयमण्डन** ये दो प्रधान थे। इन में पहले को सूरिजी ने **आचार्यपद** दिया था और दूसरे को **उपाध्यायपद**।

एक समय **धर्मरत्नसूरि** अपने शिष्यों के साथ संघपति ×**धनराज**

× '**गुरुगुणरत्नाकरकाव्य**' के तीसरे सर्ग में (श्लोक २० से २५ तक) दाक्षिणात्य सं. धनराज और नगराज नामक दो भाईयों का जिक्र है। वे दक्षिण में देवगिरि (दौलताबाद) के रहने वाले थे। उन्होंने सिद्धाचलादि तीर्थों की यात्रा के लिये बडे बडे संघ निकाले थे और लाखों रुपये खर्च किये थे। संभव है कि यह धनराज वहीं हों—समय एक ही है।

की प्रार्थना से, आबू वगैरह तीर्थों की यात्रा के लिये उस के संघ में चले। अनेक नगरों और गांवों में, संघ के साथ बडे भारी समारोह से प्रवेश करते हुए क्रमसे **मेदपाट** (**मेवाड**) देश में पहुंचे। भारत भामिनी के भूषण समान इस **मेदपाट** की क्या प्रशंसा की जाय ?–पैर पैर पर जहां सरोवर, नदियें, वन और क्रीडापर्वत विद्यमान हैं। धन और धानसे जहां के शहर समृद्धिशाली बने हुए हैं। जहां न क्लेश का लेश है और न शत्रुका प्रवेश है। न दण्ड की भीति है और न लोकों में अनीति है। न कहीं दुर्जन का वास है और न कहीं दुर्व्यसन से किसी का विनाश है। इस सुन्दर देश में, जिसने अपनी ऋद्धि से त्रिकूट को भी नीचा दिखा दिया है ऐसा जगत्प्रसिद्ध **चित्रकूट** (**चित्तोड**) पर्वत है। इस पर्वत पर उन्नत और विशाल अनेक जिनमन्दिर बने हुए हैं जिन के रणरणाट करते हुए घंटनादों से सारा पर्वत शब्दायमान हो रहा है। चैत्यों के शिखरों पर स्थापित किये हुए सुवर्ण के देदीप्यमान कलश और बहुमूल्य वस्त्रों के बने हुए ध्वजपट, दूर ही से दृष्टिगोचर होने पर श्रद्धालुओं के पाप का प्रक्षालन करने लग जाते हैं। इस पर्वत पर अनेक साधुशालायें (उपाश्रय) बनी हुई हैं जिन में निरन्तर अर्हदागमों का मधुरस्वर से जैनश्रमण स्वाध्याय करते रहते हैं। नगरनिवासी सभी मनुष्य आनन्द और विलास में निमग्न रहते हैं। कई रमणीय सरोवर, अपने मध्यमें रहे हुए कमलों के, पवनद्वारा ऊडे हुए परिमल से सुगन्धमय हो रहे हैं। उस समय इस प्रसिद्ध पर्वत का शासक क्षत्रियकुलदीपक **साङ्गा महाराणा** * था जो तीनलाख घोडों का मालिक था और जिसने अपने भुजाबल

* **साङ्गा** महाराणा का शुद्ध–संस्कृत नाम **संग्रामसिंह** था। **कर्नल टॉड के राजस्थानइतिहास** में लिखे मुजिब, इसने विक्रम संवत् १५६५ से १५८६ तक राज्य किया था।

से समुद्रपर्यंत की पृथ्वी को स्वाज्ञाधीन किया था। उस नृपश्रेष्ठ के शौर्य, औदार्य और धैर्य आदि गुणों को देख कर तथा चतुरंग शैन्य की विभूति देख कर लोक उसे नया चक्रवर्ती मानते थे।

इस **चित्रकोट** नगर में, **ओसवंश** (ओसवाल ज्ञाति) में **सारणदेव** नामक एक प्रसिद्ध पुरुष हो गया है जो जैन नृपति **आमराज***

---

* **आमराज,** सुप्रसिद्ध जैनाचार्य **बप्पभट्टि** का शिष्य था। **बप्पभट्टि** का जीवन चरित्र 'प्रभावकचरित्र' आदि कई ग्रंथों में मिलता है। 'गौडवध' नामक प्राकृतकाव्य के कर्ता कवि **वाक्पति** और **बप्पभट्टि** समकालीन थे। **आमराज** कान्यकुब्ज का अधिपति था। गौडपति प्रसिद्धनृपति **धर्मपाल**-जो पालवंश का प्रतिष्ठाता पुरुष था-**आमराज** का समसामयिक था। बंगाल के प्रख्यात लेखक और विश्वकोष के कर्ता श्रीयुक्त **नागेन्द्रनाथ वसु** प्राच्यविद्यार्णव का '**लखनउ की उत्पत्ति**' नामक एक ऐतिहासिक लेख '**पाटलिपुत्र**' के प्रथम भाग के कितनेक अंको में प्रकट हुआ है। इस लेख में, लेखक ने आमराज वगैरह के विषय में अच्छा प्रकाश डाला है। एक जगह लिखा है कि-

"जैनग्रन्थ के अनुसार आमराज के गुरु बप्पभट्टि ने ८९५ संवत् या सन् ८३८ में पंचानवे की अवस्था पर पञ्चत्व पाया था। ऐसी स्थिति में ८०० संवत् या सन् ७४३ ई. से सन् ८३८ ई. तक बप्पभट्टि के आविर्भाव का समय मानना पडता है। प्रबन्धकोष के मत से ८५१ संवत् या सन् ७९५ ई. में आमराज की ही प्रार्थना पर बप्पभट्टि ने सूरि-पद पाया था। आमराज ने वृद्ध वयस में स्तम्भतीर्थ, गिरनार, प्रभास प्रभृति नाना तीर्थ घूम और ८९० संवत् या सन् ८३४ ई. में मगधतीर्थ पहुंच प्राण छोडे। इस लिए मालूम होता है, कि सन् ७९५ से ८३४ ई. तक आमराज विद्यमान रहे। उधर गौड के पालराज वंश का इतिहास देखने से समझते हैं कि गौडाधिपति धर्मपाल ने सन् ७९५ से ८३४ ई. तक राजत्व चलाया था। ('वङ्गेर-जातीय-इतिहास' के राजन्य काण्ड का २१६ वा पृष्ठ देखना चाहिए।) इस लिए देखते हैं कि पालवंश के प्रकृत प्रतिष्ठाता महाराज धर्मपाल और कान्यकुब्जपति आमराज समसामयिक रहे।"

—पाटलिपुत्र, माघशुक्ल १, सं. १९७१।

के वंशजो में से था * । उस का पुत्र **रामदेव** हुआ । रामदेव का **लक्ष्मसिंह** (या लक्ष्मीसिंह) हुआ। उस का **भुवनपाल** और भुवन-पाल का **भोजराज** पुत्र हुआ । भोजराज का पुत्र **ठकरसिंह**, उसका **खेता** और उस का **नरसिंह** हुआ । ये सब प्रतिष्ठित नर हुए । नरसिंह का पुत्र **तोला** हुआ जिस की सतियों में ललामभूत ऐसी **लीलू** + नाम की प्रियपत्नी थी । साधु **तोला**, महाराणा **साङ्गा** का परम मित्र था । महाराणा ने उसे अपना अमात्य बनाना चाहा था परन्तु उस ने आदर-पूर्वक उस का निषेध कर केवल श्रेष्ठी पद ही स्वीकार किया । वह बडा न्यायी, विनयी, दाता, ज्ञाता, मानी, और धनी था । सहृदय और पुरा दयालु था । यश भी उस का बडे बडे लोकों में था । बहुत ही उदार-चित्त का था । याचकों को हाथी, घोडे, वस्त्र, आभूषण आदि बहुमूल्य चीजें दे दे कर कल्पवृक्ष की तरह उन का दारिद्र्य नष्ट कर देता था । जैनधर्म का पूर्ण अनुरागी था । उस पुण्यशाली **तोलासाह** के १ **रत्न**, ‡ २ **पोम**, ३ **दशरथ**, ४ **भोज** और ५ **कर्मा** नामक पाण्डवों के जैसे ५ पराक्रमी पुत्र हुए §। इन भ्राताओं में जो सब से छोटा **कर्मा साह** था वह गुणों में सभी से मोटा था अर्थात् वह पांचों में श्रेष्ठ और ख्यातिमान् था । उस के सौन्दर्य, धैर्य, गांभीर्य और औदार्य आदि सभी गुण प्रशंसनीय थे ।

---

* **लावण्यसमय** वाली प्रशस्ति (पद्य ८-९) में लिखा है कि-आमराज-की स्त्रियों में, एक कोई व्यवहारीपुत्री थी । उस की कुक्षिसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका गोत्र **राजकोष्ठागार** (राजभाण्डागारिक) कहलाया । सारणदेव उसी के गोत्र में हुआ ।

+ प्रशस्त्यनुसार, इस का दूसरा नाम ' तारादे ' था ।

‡ लावण्यसमय के कथनानुसार, इस ने चित्रकोट नगर में एक जैनमन्दिर बनवाया था ।

§ इन पांचों के परिवार का वंशवृक्ष प्रशस्त्यनुसार अन्त में दिया गया है ।

धर्मरत्नसूरि और **सं० धनराज** का संघ **मेदपाट** के पवित्र तीर्थ-स्थलों की और प्रसिद्ध नगरों की यात्रा करता हुआ क्रमशः **चित्रकोट** पहुंचा। सूरिजी के साथ संघ का आगमन सुन कर महाराणा **सांगा** अपने हाथी, घोडे, सैन्य और वादित्र वगैरह ले कर उन के सन्मुख गया। सूरिजी को प्रणाम कर उन का सदुपदेश श्रवण किया। बाद में, बहुत आडम्बर के साथ संघ का प्रवेशोत्सव किया और यथायोग्य सब संघजनों को निवास करने के लिये वासस्थान दिये। **तोलासाह** अपने पुत्रों के साथ संघ की यथेष्ट भक्ति करता हुआ। सूरिजी की निरन्तर धर्मदेशना सुनने लगा। राजा भी सूरिजी के पास आता था और धर्मोपदेश सुने करता था। सूरिजी के उपदेश से सन्तुष्ट हो कर, राजा ने पाप के मूल-भूत शिकार आदि दुर्व्यसनों का त्याग कर दिया। वहां पर एक **पुरुषोत्तम** नामका ब्राह्मण था जो बडा गर्विष्ठ विद्वान् और दूसरों के प्रति असहिष्णुता रखने वाला था। सूरिजी ने उस के साथ, राजसभा में सात दिन तक वाद कर उसे पराजित किया। इस बात का उल्लेख एक दूसरी प्रशस्ति में भी किया हुआ है। यथा—

कीर्त्या च वादेन जितो महीयान् द्विधा द्विजो यैरिह चित्रकूटे।
जितत्रिकूटे नृपतेः समक्षमहोभिरह्नाय तुरङ्गसंख्यैः ×॥

एक दिन अवकाश पा कर **लीलू** सती के पति **तोलासाह** ने अपने छोटे बेटे **कर्मासाह** के समक्ष **धर्मरत्नसूरि** से भक्तिपूर्वक एक प्रश्न किया कि–'हे भगवन्! मैं ने जो कार्य सोच रक्खा है वह सफल होगा या नहीं, यह आप विचार कर मुझसे कहने की कृपा करें।' आचार्य

× यह प्रशस्ति (शिलालेख) कहां पर थी (या अभीतक है) इस का पता नहीं। ऐसी बहुतसी प्रशस्तियों के उल्लेख कई ऐतिहासिक लेखों में मिलते हैं परन्तु वे प्रायः नष्ट हो गई हैं।

महाराज उसी समय एकाग्रचित्त हो कर अपने ज्योतिषशास्त्र विषयक विशेषज्ञान द्वारा उस के चिन्तितार्थ का स्वरूप और फलाफल सोचने लगे।

बात यह थी, कि गुर्जर महामात्य **वस्तुपाल** एक समय **शत्रुंजय** पर स्नात्र महोत्सव कर रहे थे। उस समय वहां पर अनेक देशों के बहुत संघ आये हुए थे इस लिये मन्दिर में दर्शन और पूजन करने वाले श्रावकों की बडी भारी भीड लगी हुई थी। भक्तलोक भगवान् की पूजा करने के लिये एक दूसरे से आगे होना चाहते थे। अनेक मनुष्य सुवर्ण के बडे बडे कलशों में दूध और जल भर कर प्रभु की प्रतिमा ऊपर अभिषेक कर रहे थे। मनुष्यों की इस दट्टी और पूजा करने की उत्कट धून मची हुई देख कर पूजारियों ने सोचा, कि किसी की बेदरकारी या उत्सुकता के कारण कलश वगैरह का भगवत्प्रतिमा के किसी सूक्ष्म अवयव के साथ संघट्टन हो जाने से कहीं कुछ नुकशान न हो जायँ। इस लिये उन्हों नें चारों तरफ मूर्तिको पुष्पों के ढेर से ढंक दी। मंत्री **वस्तुपाल** ने मण्डप में बैठे बैठे यह सब देखा और सोचा कि यदि किसी कलशादि के कारण या कोई म्लेच्छों के हाथ जो ऐसी दुर्घटना हो जाय तो फिर इस महातीर्थ की क्या अवस्था हो? भावी काल में होने वाले अमंगल की आशंका का अपने अन्तः-करण में इस प्रकार आविर्भाव हुआ देख कर दीर्घदर्शी महामात्य ने उसी समय मम्माण की संगमर्मर की खान में से, **मौजुद्दीन बादशाह** की आज्ञासे उत्तम प्रकार के पांच बडे बडे पाषाणखण्डों के मंग-वाने का प्रबन्ध किया*। बहुत कठिनता से वे खण्ड शत्रुंजय पर पहुंचे।

* टिप्पणि में लिखा है कि-**मोजुद्दीन** बादशाह का मंत्री **पुनड** करके था जो श्रावक हो कर **वस्तुपाल** का प्रिय मित्र था। उसने ये पाषाण खण्ड भिजवाये थे। इन खण्डों में से एक खण्ड आदिनाथ भगवान् की मूर्ति के लिये, दूसरा पुण्डरीक गणधर की, तीसरा कपर्दी यक्ष की, चौथा चक्रेश्वरी देवी की और पांचवा तेजलपुरप्रासाद लिये पार्श्वनाथ तीर्थंकर की प्रतिमा के लिये मंगवाया था।

इन में से दो खण्ड मंत्री ने मन्दिर के भूगृह में रखवा दिये कि जिस से भविष्य में कभी कोई ऊपर्युक्त दुर्घटना हो जॉय तो इन खण्डों से नई प्रतिमा बनवा कर पुनः शीघ्र स्थापित कर दी जॉय।

संवत् १२९८ में **वस्तुपाल** महामात्य का स्वर्गवास हो गया। सत्पुरुषों की जो शंका होती है वह प्रायः मिथ्या नहीं होती। विधि की वक्रता के प्रभाव से, मंत्रीश्वर के मृत्यु-अनन्तर थोडे ही वर्षों बाद मुसलमानों ने भगवान् आदिनाथ की उस भव्य मूर्ति का कण्ठछेद कर दिया *।

संवत् १३७१ में साधु **समरासाह** + ने फिर नई प्रतिमा बनवा कर उस जगह स्थापित की और वृद्ध तपागच्छ के **श्रीरत्नाकरसूरि**, जिन से इस गच्छ का दूसरा नाम **रत्नाकरगच्छ** प्रसिद्ध हुआ, ने उस की प्रतिष्ठा की। इस बात का जिक्र अन्य प्रशस्ति में भी किया हुआ है। यथा—

वर्षे विक्रमतः कुसप्तदहनैकस्मिन् (१३७१) युगादिप्रभुं
श्रीशत्रुंजयमूलनायकमतिप्रौढप्रतिष्ठोत्सवम् ।
साधुः श्रीसमराभिधस्त्रिभुवनीमान्यो वदान्यः क्षितौ
श्रीरत्नाकरसूरिभिर्गणधरैर्यैः स्थापयामासिवान् ‡॥

---

* टिप्पणी में, इस दुर्घटना का संवत् १३६८ लिखा है।

× **समरासाह** का विस्तृत वृत्तान्त के लिये मेरी '**ऐतिहासिक-प्रबन्धो**' नामक गुजराती पुस्तक देखो।

‡ यह प्रशस्तिपद्य, स्तम्भतीर्थ (खंभात) के कोटीध्वज साधु **श्रीशाणराज** के संवत् १४४९ में बनाये हुए गिरनार तीर्थ पर के श्रीविमलनाथप्रासाद की प्रशस्ति का है। यह प्रशस्ति आज उपलब्ध नहीं है। कोई ३५० वर्ष पहले बनी हुई '**बृहत्पोशालिक पट्टावलि**' में इस प्रशस्ति का उल्लेख है तथा इस के बहुत से पद्य भी उल्लिखित हैं। उन्हीं पद्यसमूहों में यह ऊपर का पद्य भी सम्मिलित है। इस का पद्यांक ७२ वां है।

समरासाह के स्थापित किये हुए बिम्ब का पीछे से म्लेच्छों (मुसलमानों) ने फिर किसी समय मस्तक खण्डित कर दिया। **धर्मरत्नसूरि** के पास बैठ कर **तोला साह** ने जिस अपने मनोरथ के सफल होने न होने का प्रश्न किया वह इसी विषय का था। तोला साह के समय तक किसी ने गिरिराज का पुनरुद्धार नहीं किया था इस लिये तीर्थपति की प्रतिमा वैसे खण्डित रूप ही में पूजी जाती थी। **वस्तुपाल** के गुप्त रक्खे हुए पाषाणखण्डों की बात संघ के नेताओं में पूर्वजपरंपरा से कर्णोपकर्ण चली आती थी;। और **समरा साह** ने तो नया ही पाषाणखण्ड मंगवा कर उसकी मूर्ति बनवाई थी, अतएव **वस्तुपाल** के रक्षित पाषाणखण्ड अभी तक भूमिगृह में वैसे ही प्रस्थापित होने चाहिये; इस लिये उन्हें निकाल कर चतुर शिल्पियों द्वारा उन के बिम्ब बनाये जाय और वर्तमान खण्डित मूर्तियों की जगह स्थापित किये जायँ तो अच्छा है; यह विचार कर **तोला साह** ने **धर्मरत्नसूरि** से अपना यह विचार सफल होगा या नहीं इस विषय का ऊपर्युक्त प्रश्न किया था।

धर्मरत्नसूरि ने प्रश्न का फलाफल विचार कर **तोला साह** से कहा कि–' हे सज्जनशिरोमणि ! तेरे चित्त रूप क्यारे में **शत्रुंजय** के उद्धार स्वरूप जो मनोरथ का बीज बोया गया है वह तेरे इस छोटे पुत्र से फलवाला होगा। और जिस तरह **समरा साह** के उद्धार में हमारे पूर्वजों–आचार्यों–ने प्रतिष्ठा करने का लाभ प्राप्त किया था वैसे तेरे पुत्र–**कर्मा साह**–के उद्धार में हमारे शिष्य प्राप्त करेंगे।' **तोला साह** सूरिजी का यह कथन सुन कर हर्ष और विषाद का एक साथ अनुभव करने लगा। हर्ष इस लिये था कि अपने पुत्र के हाथ से यह महान् कार्य सफल होगा और विषाद इस लिये कि अपना आत्मा यह महत्पुण्य उपार्जन न कर सका। **कर्मा साह** यद्यपि उस समय कुमारावस्था

में ही था परन्तु पिता की इस इच्छा के पूर्ण करने का तभी से संकल्प कर गुरुमहाराज के शुभ वचनों की शकुनग्रंथी बांध ली।

चित्रकोट की यात्रा वगैरह कर चुकने पर संघ ने आगे चलने का प्रयत्न किया। **तोला साह** ने **धर्मरत्नसूरि** को वहीं ठहरने के लिये अत्यंत आग्रह किया। सूरि ने कहा ' महाभाग ! विवेकी हो कर हमें अपनी यात्रा में क्यों अन्तराय डालना चाहते हो। ' इस पर सेठ बडा उदासीन हुआ तब उस के चित्त को सन्तुष्ट करने के लिये अपने शिष्य **विनयमण्डन** नामक पाठक को वहीं पर रख दिये। सूरि संघ के साथ यात्रा के लिये प्रस्थित हो गये। **विनयमण्डन** पाठक के समीप में **तोला साह** आदि श्रावकवर्ग उपधान वगैरह तपश्चर्यादि धर्मकृत्य करने लगा। **रत्ना साह** आदि **तोला साह** के पांचों पुत्र भी पाठक के पास षडावश्यक, नवतत्त्व और भाष्यादि धर्मग्रन्थों का अभ्यास करने लगे। भाविकाल में महान् कार्य करने वाले **कर्मा साह** ऊपर, अपने गुरु के कथन से उपाध्यायजी सब से अधिक प्रेम रखने लगे। एक दिन **कर्मा साह** ने विनय पूर्वक **विनयमण्डन** जी से कहा कि ' महाराज ! आप के गुरु के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिये आप को मेरे सहायक बनने पडेंगें। ' उपाध्याय जी ने हँस कर मीठे वचन से कहा कि ' महाभाग ! ऐसे सर्वोत्तमकार्य में कौन साहाय्य करना नहीं चाहता ? ' तदनन्तर कोई अच्छा अवसर देख कर उन्हों ने **कर्मा साह** को ' चिन्तामणिमहामन्त्र ' आराधन करने के लिये विधि पूर्वक प्रदान किया। उपाध्याय जी, कई महिने तक चित्रकोट में रहे और ज्ञान, ध्यान, तप और क्रिया आदि मुनिवृत्तिद्वारा श्रावकों के चित्त को आनन्दित करते हुए यथायोग्य सब को उचित उचित धर्म कार्यों में लगाये। **कर्मा साह** को तीर्थोद्धार विषयक प्रयत्न में लगे रहने का वारंवार उपदेश कर उपाध्यायजी वहांसे फिर अन्यत्र विहार कर गये।

कुछ वर्ष बाद तोला साह अपने धर्मगुरु श्रीधर्मरत्नसूरि का स्मरण करता हुआ, न्यायोपार्जित धन को पुण्य क्षेत्रों में वितीर्ण करता हुआ और सर्व प्रकार के पापों का पश्चात्तापपूर्वक प्रत्याख्यान करता हुआ स्वर्ग के सुखों का अनुभव करने के लिये इस संसार को छोड गया। पिता के विरह से सब पुत्र शोकग्रस्त हुए परन्तु संसार के अचल नियम का स्मरण कर समय के जाने पर शोकमुक्त हो कर अपने अपने व्यावहारिक कर्तव्यों का यथेष्ट पालन करने लगे। छोटा पुत्र कर्मा साह कपडे का व्यापार करता था जिस में वह दिन प्रति दिन उन्नति पाता हुआ सज्जनों में अग्रेसर गिना जाने लगा। वह दैवसिक और रात्रिक-दोनों संध्यायों में निरंतर प्रतिक्रमण करता था। त्रिकाल भगवत्पूजा और पर्व के दिनों में पौषध वगैरह भी नियमित करता रहता था। धर्म और नीति के प्रभाव से थोडे ही वर्षों में उस ने क्रोडों रुपये पैदा किये। हजारों वणिक्पुत्रों को व्यवहार कार्य में लगा कर उन्हें सुखी कुटुम्ब वाले बनाये। शीलवती और रूपवती ऐसी अपनी दोनों * प्रियाओं के साथ कौटुम्बिक सुखका आनन्दप्रद अनुभव करता हुआ, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और स्वजनादि के बीचमें साक्षात् इन्द्र की तरह वह साह शोभने लगा। निरन्तर याचकजनों को कल्पवृक्ष की समान इच्छित दान दे दे कर दुखियों के दुखों का नाश करने लगा। इस तरह सब प्रकार का पुरुषार्थ साध कर बाल्यावस्था में जिस प्रतिज्ञा का स्वीकार किया था उसके पूर्ण करने का सतत प्रयत्न करता हुआ कर्मा साह जैनधर्म और जिनदेव की सदैव सेवा-उपासना करने लगा।

* लावण्यसमय वाली प्रशस्ति में कर्मा साह के कुटुम्ब के कुल मनुष्यों के नाम दिये हुए हैं जिस में इन दोनों पतिव्रताओं के नाम भी सम्मिलित हैं। पहली स्त्री का नाम कपूरदेवी और दूसरी का नाम कमलादेवी था। कमलादेवी से एक पुत्र हुआ था जिस का नाम भीषजी था। पुत्र के सिवा ४ पुत्रियें भी थी। सबका नामोल्लेख वंशवृक्ष में किया गया है।

उद्धार-वर्णन ।

(दूसरा उल्लास ।)

चापोत्कट (चावडा) वंश के प्रसिद्ध नृपति वनराज ने गुजरात की (मध्यकालीन) राजधानी अणहिल्लपुर-पाटण को बसाये बाद, * वनराज, योगराज, क्षेमराज, भूयड, वज्र, रत्नादित्य और सामन्त सिंह नामक ७ चावडाराजाओं ने उस में राज्य किया । उन के बाद मूलराज, चामुण्डराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीमराज, कर्णराज, जयसिंय (सिद्धराज), कुमारपाल, अजयपाल, × लघु मूलराज और भीमराज--ने इन ११ चौलुक्य (सोलंकी) नृपतियों ने गुजरात का शासन किया । चौलुक्यों के बाद बाघेलावंश के वीरधवल, वीसल, अर्जुन देव, सारङ्गदेव और कर्ण नामक पांच राजाओं का राज्य रहा । संवत् १३५७ में अलाउद्दीन के सैन्य ने कर्णराजा का पराजय कर पट्टन में अपना अधिकार जमाया ।

विक्रम संवत् १२४५ में मुसलमानों ने भारत की राजधानी दिल्ली को अपने आधीन में लिये बाद अलाउद्दीन तक १५ बादशाहों ने वहां पर अधिकार किया । उन के नाम इस प्रकार है--

---

* इन सब राजाओं ने कितने कितने समय तक राज्य किया है इसका उल्लेख, मूल प्रबन्ध के अन्तमें जो ' राजावली--कोष्ठक ' दिया है उस में स्वयं प्रबन्धकार ने कर दिया है ।

× टिप्पणि में लिखा है, कि किसी किसी जगह अजयपाल के बाद त्रिभुवनपाल का नाम लिखा हुआ मिलता है परन्तु वीरधवल के पुरोहित सोमेश्वर कवि की बनाई हुई ' कीर्तिकौमुदी ' में वह नहीं गिना गया है इस लिये हमने भी उस का उल्लेख नहीं किया ।

§ १ महिमद,	८ मोजदीन.
२ सांजरसाहि,	९ अलावदीन.
३ मोजदीन.	१० नसरत.
४ कुतुबदीन.	११ ग्यासदीन.
५ साहबदीन.	१२ मोजदीन.
६ रुकमदीन.	१३ समसुदीन.
७ जूआंबीबी.	१४ जलालदीन.

१५ वाँ बादशाह अलाउद्दीन हुआ। वह संवत् १३५४ में दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसने ठेठ गुजरात से ले कर लाभपुर (लाहोर) तक का प्रदेश जीता था। अलाउद्दीन से लेकर, कुतुबदीन, सहाबदीन, खसरबदीन, ग्यासदीन और महिमुद तक के दिल्ली के ६ बादशाहों ने गुजरात का शासन चलाया। उन की आज्ञा से क्रमशः अलखान (अलपखान), खानखाना, दफरखान और ततारखान पाटन के सुबेदार रहे। पीरोजशाह के समय में गुजरात स्वतंत्र हुआ और गुजरात की जुदी बादशाही शुरू हुई। संवत् १४३० में मुजफर नामका हाकिम गुजरात का पहला बादशाह बना। *

§ इन सब मुसलमान बादशाहों के राज्यकाल का भी मान 'राजावलीकोष्ठक' में दिया हुआ है'

* राजावलीकोष्ठक में, इस ने २४ वर्ष राज्य किया ऐसा लिखा हुआ है। उस में इस के सदूमलिक (?), उज्जहेल (?) और मुजफ्फर इस प्रकार तीन नाम लिखे हैं जिन में प्रथम के दो का कुछ भी अर्थ ज्ञात नहीं होता। तवारिखों में इस का पहला नाम जफरखान मिलता है। इस के बादशाह होने की तारीख तवारिखों में जुदी जुदी मिलती है। रासमाला में ई० सन् १३९१ (संवत् १४४७) का उल्लेख है। अन्यान्य ग्रन्थों में ई० सन् १४०७-८ (संवत् १४६३-४) मिलता है। कोष्ठक में लिखा है कि पूर्वावस्था में कुछ उपकार करने के कारण फिरोजशाह बादशाह ने अपना उपकारी समझ कर इसे गुजरात

मुजफरशाह की मृत्यु बाद संवत् १४५४* में अहमदशाह गद्दी पर बैठा। उस ने संवत् १४६८× में साबरमती नदी के किनारे, जहां प्राचीन कर्णावती नगरी थी वहां पर, अपने नाम से अहमदाबाद शहर बसाया और पट्टन के बदले उसे अपनी कायम की राजधानी बनाया। अहमदशाह के पीछे उस का बेटा महम्मदशाह बादशाह हुआ उस के बाद कुत्बुद्दीन और फिर महमूद बादशाह बना। वह महमूद

का राज्य दिया था। तवारिखों में इस के विषय में जो कुछ लिखा हुआ है उस का मतलब इस प्रकार है–फिरोज तुगलक, बादशाह बनने के पहले, एक दफे पंजाब के जंगल में शिकार खेलने गया था। वहां पर वह भूला पड गया और इधर उधर भटकता हुआ टांकजाति के राजपूतों के एक गांव में जा पहुंचा। शाहरान और साधु नामक दो राजपूत भाईयों ने उसका स्वागत किया और कुछ दिन तक अपने घर पर रक्खा। उन की एक बहन थी जिस के साथ फिरोज का प्रेम हो जाने से उस को ब्याह कर वह दिल्ली ले गया। साथ में वे दोनों भाई भी दिल्ली गये और फिरोज के कथन से उन्हों ने वहां पर इस्लामधर्म का स्वीकार किया। शाहरान का नाम वजीहुल्मुल्क और साधु का नाम समशेरखान रक्खा गया। जब फिरोज बादशाह बना तब समशेरखान और वजीहुल्मुल्क के बेटे जफरखान को अमीरपद दिया गया। कुछ समय बाद जफरखान को गुजरात का सुबा बना कर पाटन भेजा गया। फिरोजशाह के मर जाने पर उस ने अपने को गुजरात का स्वतंत्र अधिकारी मान कर अपने बेटे तातारखान को, नासिरुद्दीन महम्मदशाह के नाम से गुजरात का स्वतंत्र सुलतान जाहिर किया। महम्मद ने आसावल्ली (जो पीछे से अहमदाबाद कहलाया) को राजधानी बनाया और दिल्ली के बादशाह को जीतने के लिये रवाना हुआ। रास्ते में पाटन में किसी ने जहर दे कर उसे मार डाला। उस के मर जाने पर, बडे बडे अमीरों के कथन से जफरखान स्वयं तख्त पर बैठा और मुजफरशाह के नाम से अपने को गुजरात का बादशाह जाहिर किया।

* तवारिखों में सन् १४११ ईस्वी (सं० १४६७) लिखा हुआ है।

× राजावली कोष्टक में अहमदाबाद के स्थापन की मीती वैशाख वदि ७ रविवार और पुष्यनक्षत्र के दिन की लिखी है। आईन–ए–अकबरी में सन् १४११ और फिरस्ता में सन् १४१२ की साल है।

बेगडा के नाम से प्रसिद्ध है। उस ने जूनागढ और पावागढ (चांपानेर) के प्रसिद्ध किलों को जीत कर अपने राज्य में मिलाये। महमूद के बाद मुजफर दूसरा बादशाह हुआ। वह लक्षण, साहित्य, ज्योतिःशास्त्र और सङ्गीत आदि विद्यायों का अच्छा जानने वाला था। विद्वानों को आधार भूत और वीरपुरुष था। उस ने अपनी प्रजा का, पुत्रवत् पालन किया था। उस के कई पुत्र थे जिन में शिकन्दर सब से बडा था। उसने नीति, शक्ति और भक्ति से अपने पिता का और प्रजा का दिल अपनी और आकृष्ट कर लिया था। उस का छोटा भाई बहादुरखान नामक था जो बडा उद्भट, साहसिक और शूरवीर था। उस ने पूर्वकाल के नृपपुत्रों के चरित्रों का विशेष अवलोकन किया था। इस लिये उन की तरह उस का भी मन देशाटन कर अपने ज्ञान की वृद्धि करने का हो गया। कितनेक नोकरों को साथ ले कर वह अहमदाबाद से प्रवेशकी मुसाफरी करने के लिये निकल गया *। नाना गॉवों और शहरों में होता हुआ वह क्रमसे चित्रकूट (चित्तोड) पहुंचा। वहां पर, महाराणा ने उस का यथोचित सत्कार किया।

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि कर्मा साह कपडे का व्यापार करता था। बंगाल और चीन वगैरह देश विदेशों से करोडों रुपये का माल उस की दूकान पर आता जाता था। इस व्यापार में उस ने अपरिमित रूप में द्रव्यप्राप्ति की थी। शाहजादा बहादुरखान ने भी कर्मा साह की दूकान से बहुत सा कपडा खरीद किया। इस से

---

* तवारिखों में तो लिखा है कि "शाहजादा बहादुरखान, पिता ने अपने को थोडी सी जागीर देने के कारण नाराज हो कर गुजरात को छोड हिन्दुस्थान में चला गया। और मुजप्फर शाह ने बडे बेटे सिकन्दरखान को अपना उत्तराधिकारी बना कर बादशाह बनाया।

(गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास।)

साह की शाहजादा के साथ अच्छी मैत्री हो गई। स्वप्न में गोत्रदेवी ने आकर कर्मा साह से कहा कि " इस शाहजादा से तेरी ईष्ट सिद्धि होगी " इस लिये उस ने खान, पान, वसन और प्रिय वचन से मुसाफर शाहजादा का बहुत सत्कार किया। बहादुरखान के पास इस समय खर्ची बिलकुल खूट गई थी इस लिये कर्मा साह ने उसे एक लाख रुपये विना किसी शरत के मुफ्त में दिये। शाहजादा इस से अति आनन्दित हुआ और साह से कहने लगा कि ' हे मित्रवर ! जीवन पर्यंत मैं तुमारे इस अहसान को न भूल सकूंगा। ' इस पर कर्मा साह ने कहा कि ' आप ऐसा न कहें। आप तो हमारे मालिक हैं और हम आप के सेवक हैं। केवल इतनी अर्ज है कि कभी कभी इस जन का स्मरण किया करें और जब आप को राज्य मिले तब शत्रुंजय के उद्धार करने की जो मेरी एक प्रबल उत्कण्ठा है उसे पूर्ण करने दें। ' शाहजादा ने साह की इच्छा पूर्ण करने देने का वचन दिया और फिर उस की अनुमति ले कर वहां से अन्यत्र गमन किया।

इधर गुजरात में मुजफरशाह की मृत्यु हो गई और उस के तख्त पर सिकन्दर बैठा। वह अच्छा नीतिवान् था परन्तु दुर्जनों ने उसे थोडे ही दिनों में मार डाला। यह वृत्तान्त जब बहादुरखान ने सुना तो वह शीघ्र गुजरात को लौटा और चापानेर पहुंचा। वहीं संवत् १५८३ के भाद्रपद मास की शुक्ल द्वितीया और गुरुवार के दिन, मध्याह्न समय में उस का राज्याभिषेक हुआ और बहादुर शाह नाम धारण किया+। बहादुर-

---

* ' गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास ' नामक पुस्तक में लिखा है कि " सिकंदर शाह ने थोडे महिने राज्य किया इतने में इमादुल्मुल्क खुशकदम नाम के अमीर ने उसे मार डाला और उस के छोटे भाई नासिरखान को महमूद दूसरा, इस नाम से बादशाह बना कर, उस की ओर से स्वयं राज्य करने लगा। परन्तु दूसरे अमीर उस के विरोधी बन कर बहादुरखान जो हिन्दुस्थान से वापस आया था उस के साथ मिल गये। बहादुरखान के पक्ष के अमीरों में धंधुका का मलिक ताजखान

शाह ने अपने राज्य की लगाम हाथ में लेकर पहल पहल जितने स्वामीद्रोही, दुर्जन, और उद्धत मनुष्य थे उन सब को कडी शिक्षा दी; किसी को मार डाला, किसी को देशनिकाल किया, किसी को कैद में डाला, किसी को पदभ्रष्ट किया और किसी को लूट लिया। उस के प्रताप के डर के मारे निरंतर अनेक राजा आ कर बडी बडी भेंटें सामने धरने लगे। पूर्वास्था में जिन जिन मनुष्यों ने उस पर उपकार या अपकार किया था उन सब को क्रमशः अपने पास बुला बुला कर यथायोग्य सत्कार या तिरस्कार कर कृतकर्म का फल पहुंचाने लगा। सुकर्मी कर्मा साह को भी, उस के किये हुए निःस्वार्थ उपकार को स्मरण कर, बडे आदर के साथ कृतज्ञ बादशाह ने अपने पास बुलाने के लिये आह्वान भेजा। साह भी आमंत्रण आते ही भेंट के लिये अनेक बहुमूल्य चीजें लेकर उस के पास पहुंचा। बहादुरशाह ने साह के सामने आते ही ऊठ कर दोनों हाथों से बडे प्रेम के साथ उस का आलिङ्गन किया। अपने सभामण्डल के आगे कर्मा साह की निष्कारण परोपकारिता की खूब प्रशंसा करता हुआ बोला कि–" यह मेरा परम मित्र है। जिस समय बुरी दशा ने मुझे बे तरह तङ्ग किया था तब इसी दयालु ने उस से मेरा छुटकारा करवाया था।" बादशाह के मुंह से इन शब्दों को सुन कर कर्मा साह बीच ही में एकदम बोल कर उसे आगे बोलने से बन्ध किया और कहा कि " हे शाहन्शाह ! इतना बोझा मुझ पर न रक्खें, मैं इसे ऊठा सकने में समर्थ नहीं हूं। मैं तो केवल आपका एक सेवक मात्र हूं। मैं ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया है कि जिस से आप मेरी इतनी तारीफ करें। " इस तरह परस्पर मैत्रीपूर्ण

मुख्य था। बहादुरखान एकदम कूच कर चांपानेर पहुंचा। वहां उसने इमादुल्मुल्क को पकड कर मार डाला और नासिरखान को जहर दे कर, स्वयं बहादुरशाह नाम धारण कर १५२७ ई. में तख्त पर बैठा।

संभाषण हो चुकने पर बादशाह ने साह को ठहरने के लिये अपने शाही-महल का एक सुन्दर भाग खोल दिया। उस की खातिर–तवज्जा के लिये सब प्रकार का उत्तम बन्दोबस्त किया गया। बाद में कर्मा साह देव-गुरु के दर्शन के लिये अच्छे ठाठ-पाट से जिन मन्दिर और जैन उपाश्रय में गया। विधिपूर्वक देव और गुरु का दर्शन-वन्दन किया। नाना प्रकार के वस्त्र, आभूषण और मिष्टान्न याचकों को दान में दिये। श्रीसोमधीर गणि नाम के विद्वान् यति वहां पर विराजमान् थे जिन के पास कर्मा साह सदैव धर्मोपदेश सुनने और आवश्यकादि धर्मकृत्य करने के लिये जाया करने लगा।

इस प्रकार निरन्तर पूजा, प्रभावना और साधर्मि वात्सल्यादि करता हुआ साह सावधान हो कर बादशाह के पास रहने लगा। कुछ दिन बाद श्री विद्यामण्डन सूरि और विनयमण्डन पाठक को कर्मा साह ने अपने आगमनसूचक तथा बादशाह की मुलाकात वगैरह के वृत्तान्त वाले पत्र लिखे। बादशाह ने साह के पास से पहले चित्तोड में जो कुछ द्रव्य लिया था वह सब उसने पीछा दिया। एक दिन बादशाह खुश हो कर बोला कि "हे मित्रवर! मैं तुमारा क्या इष्ट कर सकूं? मेरा दिल खुश करने के लिये मेरे राज्य में से कोई देश इत्यादि का स्वीकार करो।" साह ने कहा "आपकी कृपा से मेरे पास सब कुछ है। मुझे कुछ भी वस्तु नहीं चाहिए। मैं केवल एक बात चाहता हूं, कि शत्रुंजय पर्वत पर मेरी कुलदेवी की स्थापना हों। उस के लिये मैंने कई कठिन अभिग्रह कर रक्खें हैं। यह बात मैंने पहले भी आप से चित्रकूट में, आप के विदेश जाते समय कही थी और जिस के करने का आपने वचन भी प्रदान किया था। उस वचन के पूर्ण करने का अब समय आ गया है इस

लिये वैसा करने की आज्ञा दें। " यह सुन कर बादशाह बोला कि " हे साह ! तुमारी जो इच्छा हो वह निःशङ्क हो कर पूर्ण करो। मैं तुमें अपना यह शासनपत्र (फर्मान) देता हूं जिस से कोई भी मनुष्य तुमारे कार्य में प्रतिबन्ध नहीं कर सकेगा। " यह कह कर बादशाह ने एक शाही फर्मान लिख दिया जिसे ले कर, अच्छे मुहूर्त में कर्मा साह ने वहां (चांपानेर) से शीघ्र ही प्रयाण किया।

आकाश को शब्दमय कर देने वाले वाजिंत्रों के प्रचण्ड घोष पूर्वक साह ने शहर से निर्गमन किया। चलते समय सुवासिनी स्त्रियों ने मंगल कृत्य कर उस के सौभाग्य को बधाया। बहार निकलते समय बहुत अच्छे शकुन हुए जिन्हें देख कर कर्मा साह के आनन्द का वेग बढने लगा। रास्ते में स्थान स्थान पर सेंकडों बन्दिजनों ने साह का यशोगान किया जिस के बदले में उस ने, उन के प्रति धन की धारा वर्षाई। हाथी, घोडे और रथ पर चढे हुए अनेक संघजनों से परिवृत हो कर रथारूढ कर्मा साह क्रमशः शत्रुंजय की ओर आगे बढने लगा। मार्ग में स्थान स्थान पर जितने जैनचैत्य आते थे उन प्रत्येक में स्नात्र महोत्सव और ध्वजारोपण करता हुआ, जितने उपाश्रयों में जैनसाधु मिलते थे उन के दर्शन-वन्दन कर वस्त्र-पात्रादि दान देता हुआ, जितने दरिद्र लोक दृष्टिगोचर होते थे उन को यथायोग्य द्रव्य की सहायता पहुंचाता हुआ और चीडीमार-मच्छीमार आदि हिंसक मनुष्यों को उन के पापकर्म से मुक्त करता हुआ शत्रुंजयोद्धारक वह परम प्रभावक श्रावक स्तंभतीर्थ (खंभात) को पहुंचा।

स्तंभतीर्थवासी जैनसमुदाय ने बडे महोत्सवपूर्वक कर्मा साह का नगर प्रवेश कराया। स्तंभनक पार्श्वनाथ और सीमन्धर तीर्थंकर के

मन्दिरों में दर्शन कर साह पौषधशाला (उपाश्रय) में गया। वहां पर **श्रीविनयमण्डन पाठक** विराजमान थे उन को बडे हर्षपूर्वक वन्दन कर सुखप्रश्नादि पूछे। बाद में साह कह ने लगा कि "हे सुगुरु! आज मेरा दिन सफल है जो आपके दर्शन का लाभ मिला। भगवन्! पहले जो आपने मुझे जिस काम के करने की सूचना की थी उस के करने की अब स्पष्ट आज्ञा दें। आप समस्त शास्त्र के ज्ञाता और सब योग्य-क्रियाओं में सावधान हैं इस लिये मुझे जो कर्तव्य और आचरणीय हो उस का आदेश दीजिए। लोकों में साधारण वस्तु का उद्धार-कार्य भी पुण्य के लिये होना माना गया है तो फिर शत्रुंजय जैसे पर्वत पर जिनेन्द्र जैसे परमपुरुष की पवित्र प्रतिमा के उद्धार का तो कहना ही क्या है? —वह तो महान् अभ्युदय (मोक्ष) की प्राप्ति कराने वाला है। पूज्य! आप ही का किया हुआ यह उपदेश आप के सन्मुख मैं बोल रहा हूं उस लिये मेरी इस धृष्टता पर क्षमा करें।" साह के इस प्रकार बोल रहने पर पाठक जरा मुस्कराये परन्तु उत्तर कुछ नहीं दिया। बाद में उन्हों ने यथोचित सारी सभा के योग्य धर्मोपदेश दिया जिसे सुन कर सब ही खुश और उपकृत हुए। अन्त में कर्मा साह को पाठक ने कहा कि "हे विधिज्ञ! जो कुछ करना है वह तो तुम सब जानते ही हो। हमारा तो केवल इतना ही कथन है कि अपने कर्तव्य में शीघ्रता करो। अवसर आने पर हम भी अपने कर्तव्य का पालन कर लेंगे। शुभकार्य में कौन मनुष्य उपेक्षा करता है?" मुनि-उचित इस प्रकार के संभाषण को सुन कर व्यंगविज्ञ कर्मा साह ने पाठक के आगमन की इच्छा को जान लिया और फिर से उन को नमस्कार कर वहां से रवाना हुआ।

पांच छ ही दिन में साह वहां पहुंचा जहां से शत्रुंजय गिरि के दर्शन हो सकते थे। गिरिवर के दृष्टि गोचर होते ही, जिस तरह मेघ

के दर्शन से मोर और चन्द्र के दर्शन से चकोर आनन्दित होता है वैसे साह भी आनन्दपूर्ण हो गया। वहीं से उसने सुवर्ण और रजत के पुष्पों से तथा श्रीफलादि फलों से सिद्धाचल को बधाया। याचकों को दान देकर सन्तुष्ट किया। गिरिवर को भावपूर्वक नमस्कार कर फिर इस प्रकार स्तुति करने लगा " हे शैलेन्द्र! इच्छित देने वाले कल्पवृक्ष की समान बहुत काल से तेरे दर्शन किये हैं। तेरा दर्शन और स्पर्शन दोनों ही प्राणीयों के पाप का नाश करने वाले हैं। ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों के देने वाले तेरे दर्शन किये बाद स्वर्गादि कों में भी मेरा सकल्प नहीं है। स्वर्गादि सुखों की श्रेणि के दाता और दुःख तथा दुर्गति के लिये अर्गला समान हे गिरीन्द्र! चिर काल तक जयवान् रहो! तूं साक्षात् पुण्य का परम मन्दिर है। जिन के लिये हजारों मनुष्य असंख्य कष्ट सहन करते हैं वे चिन्तामणि आदि चीजें तेरा कभी आश्रय ही नहीं छोडती हैं। तेरे एक एक प्रदेश पर अनन्त आत्मा सिद्ध हुए हैं इस लिये जगत् में तेरे जैसा और कोई पुण्यक्षेत्र नहीं है। तेरे ऊपर जिनप्रतिमा हों अथवा न हों—तूं अकेला ही अपने दर्शन और स्पर्शन द्वारा लोकों के पाप का नाश-करता है। सीमन्धर तीर्थंकर जैसे जो भारतीय जनों की प्रशंसा करते हैं उस में तुझे छोड कर और कोई कारण नहीं है। " इस प्रकार की स्तवना कर, अंजलि जोड कर पुनर् नमस्कार किया और फिर वहां से आगे चला। अपने सारे समुदाय के साथ शत्रुंजय की जड में—आदिपुर पद्या (तलहटी)-में जाकर वास स्थान बनाया *।

*टिप्पणि में लिखा है कि—आदिपुरपद्या (तलहटी) में जो कर्मासाह ने वासस्थान रक्खा उस का कारण सूत्रधारों (कारीगरों) कों ऊपर जाने अने में सुविधा रहे इस लिये था। बाद में प्रतिष्ठा के समय जब बहुत लोक एकट्ठे हुए तब वहां से स्थान ऊटा कर पालीताणे में रक्खा था। क्यों कि वहां पानी वगैरह की तंगाईस पडने लगीथी।

इस समय सौराष्ट्र का सूबा मयादखान (मुझाहिदखान) था। वह कर्मा साह के इस कार्य से दिल में बडा जलता था परन्तु अपने मालिक (बहादुरशाह) की आज्ञा होने से कुछ नहीं कर सकता था। गूर्जर वंश के रविराज और नृसिंह * ने कर्मा साह को अपने कार्य में बहुत साहाय्य दिया।

खंभायत से **विनयमण्डन पाठक** भी साधु और साध्वी का बहुत सा परिवार ले कर सिद्धाचल की यात्रा के उद्देश से कुछ समय बाद वहां पर आ पहुंचे। गुरुमहाराज के आगमन से कर्मा साह को बडा आनन्द हुआ और अपने कार्य में दुगुना उत्साह हो आया। पाठकवर ने समरा आदि गोष्ठिकों को बुला कर महामात्य वस्तुपाल के लाये हुए मम्माणी खान के दो पाषाणखण्ड जो भूमिगृह में गुप्त रूप से रक्खे हुए थे, मांगे। गोष्ठिकों के दिल को खुश और वश करने के लिये कर्मा साह ने गुरु महाराज के कथन से उन को इच्छित से भी अधिक धन दे कर वे दोनों पाषाण खण्ड लिये और मूर्ति बनाने का प्रारंभ किया। अपने अन्यान्य कौटुम्बिकों के कल्याणार्थ कुछ प्रतिमायें बनवाने के लिये और भी कितने ही पाषाणखण्ड, जो पहले के पर्वत पर पडे हुए थे, लिये। सूत्रधारों (कारीगरों) को निर्माण कार्य में योग्य शिक्षा देने के लिये, पाठकवर्य ने, **वाचक विवेकमण्डन** और **पण्डित विवेकधीर** नामक अपने दो शिष्यों को, जो वस्तुशास्त्र (शिल्पविद्या) के विशेषज्ञ विद्वान् थे, निरीक्षक के स्थान पर नियुक्त किये। उन के लिये शुद्ध–निर्दोष आहार–पानी लाने का काम **क्षमाधीर** प्रमुख मुनियों को सौंपा। और बाकी के जितने मुनि थे वे सब संघ की शान्ति के लिये छट्ठ–अट्ठमादि

---

* लावण्यसमय की प्रशस्ति में (देखो, श्लोक २९) रविराज (या रवा) और नृसिंह–इन दोनों को मयादखान (मुझाहिदखान) के मंत्री (प्रधान) बतलाये हैं। डॉ॰ बुल्हर के कथनानुसार ये जैन थे। (देखो, एपिग्राफिआ इन्डिका प्रथम पुस्तक.)

के विशेष तप तपने लगे। रत्नसागर और जयमण्डन नाम के दो यतियों ने छमासीतप किया । व्यन्तर आदि नीच देवों के उपद्रवों के शमनार्थ पाठकवर्य ने सिद्धचक्र का स्मरण करना शुरू किया । इस प्रकार वे सब धर्म के सार्थवाह तप, जप, क्रिया, ध्यान, और अध्ययन रूपी अपने धर्म व्यापार में बहुत कुछ लाभ प्राप्त करते हुए रहने लगे ।

सूत्रधारों के मन को आवर्जित करने की इच्छा से कर्मासाह निरंतर उन को खाने के लिये अच्छे अच्छे भोजन और पीने के लिये गर्म दूध वगैरह चीजें दिये करता था। पर्वत पर चढने के लिये डोलियों का भी यथेष्ट प्रबन्ध कर दिया गया था। अधिक क्या !— सेंकडों ही वे सूत्रधार जिस समय, जिस चीज की इच्छा करते थे उसे, उसी समय कर्मा साह द्वारा अपने सामने रक्खी हुई पाते थे। इस तरह साह की सुव्यवस्था और उदारता से आवर्जित हो कर सूत्रधार भी दत्तचित्त हो कर अपना काम करते थे और जो कार्य महिने भर में किये जाने योग्य था उसे वे दश ही दिन में पूरा कर देते थे। उन कारीगरों ने सब प्रतिमायें बहुत चतुरता के साथ तैयार की और सब अवयव वास्तुशास्त्र के उल्लेख मुजिब यथास्थान सुन्दराकार बनाये * । अपराजित शास्त्र में लिखे हुए लक्षण मुताबिक, + आय-भाग के ज्ञाता ऐसे उन कुशल कारीगरों ने थोडे ही काल में अद्भुत और उन्नत मन्दिर तैयार किया । इस प्रकार जब सब प्रतिमायें लगभग तैयार हो गई और मन्दिर भी पूर्ण बन चुका तब शास्त्रज्ञाता विद्वानों ने प्रतिष्ठा के मुहूर्त का निर्णय करना शुरू किया ।

---

* यह शिल्पशास्त्र का प्रामाणिक और अत्युत्तम ग्रंथ है । यह अब संपूर्ण नहीं मिलता । पाटन के प्राचीन-भाण्डागार में इस का कितनाक भाग विद्यमान है ।

+ मन्दिरों और भुवनों के उच्च-नीच भागों का वास्तुशास्त्र में जुदा जुदा आय के नाम से व्यवहार किया जाता है ।

इस के लिये कर्मा साह ने दूर दूर से, आमन्त्रण कर कर, ज्ञान और विज्ञान के ज्ञाता ऐसे अनेक मुनि, अनेक वाचनाचार्य, अनेक पण्डित, अनेक पाठक, अनेक आचार्य, अनेक गणि, अनेक देवाराधक और निमित्त शास्त्र के पारंगत ऐसे अनेक ज्योतिषी बुलाये। उन सब ने एकत्र हो कर अपनी कुशाग्रबुद्धि द्वारा, सूक्ष्म विवेचना पूर्वक प्रतिष्ठा के शुभ और मंगलमय दिन का निर्णय किया। फिर कर्मा साह को वह दिन बताया गया और सभी ने शुभाशीर्वाद दे कर कहा कि "हे तीर्थोद्धारक महा-पुरुष ! संवत् १५८७ × के वैशाख वदि (गुजरात की गणना से चैत्र वदि) ६, रविवार और श्रवण नक्षत्र के दिन जिनराज की मूर्ति की प्रतिष्ठा का सर्वोत्तम मुहूर्त है, जो तुमारे उदय के लिये हो।" कर्मा साह ने, उन के इस वाक्य को हर्ष पूर्वक अपने मस्तक पर चढाया और यथा योग्य उन सब का पूजन–सत्कार किया।

मुहूर्त का निर्णय हो जाने पर कुंकुमपत्रिकायें लिख लिख कर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण—चारों दिशाओं के जैन संघों को इस प्रतिष्ठा पर आने के लिये आमंत्रण दिये गये। आचार्य **श्रीविद्यामण्डन-सूरि** को आमंत्रण करने के लिये साह ने अपने बडे भाई **रत्नासाह** को भेजा। कुंकुमपत्रिकायें पहुंचते ही चारों तरफ से, बडी बडी दूरसे संघ आने लगे। अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, काश्मीर, जालन्धर, मालव........लाट, सौराष्ट्र, गुजरात, मगध, मारवाड और मेवाड आदि कोई भी देश ऐसा न रहा कि जहां पर कर्मा साह ने आमंत्रण न भेजा हो अथवा विना आमंत्रण के भी जहां के मनुष्य उस समय न आने लगे हों। कहीं से हाथी पर, कहीं से घोडे पर, कहीं से रथ पर, कहीं से बेल पर, कहीं से पालखी पर और कहीं से ऊँट पर सवार हो कर मनुष्यों के झूंड के झूंड शत्रुंजय पर आने लगे।

× प्रतिष्ठामुहूर्त की लग्नकुंडली राजावलीकोष्टक के अन्तमें दी हुई है।

रत्ना साह, विद्यामण्डनसूरि के पास पहुंचा और हर्षपूर्वक नमस्कार तथा स्तवना कर गिरिराज की प्रतिष्ठा पर चलने के लिये संघ के सहित आमंत्रण किया। सूरिजी ने कहा " हे महाभाग ! पहले तुमने जब चित्तोड पर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ का अद्भुत मन्दिर बनवाया था तब भी तुमने हमको आमंत्रण दिया था परन्तु किसी प्रतिबन्ध के कारण हम तब न आ सके और हमारे शिष्य **विवेकमण्डन** ने उस की प्रतिष्ठा की थी। परन्तु शत्रुंजय की यात्रा के लिये तो पहले ही से हमारा मन उत्कण्ठित हो रहा है और फिर जिस में यह तुमारा प्रेमपूर्ण आमंत्रण हुआ। इस लिये अब तो हमारा आगमन हों इस में कहने की बात ही क्या है ? " यह कह कर, **सौभाग्यरत्नसूरि** आदि अपने विस्तृत शिष्य परिवार से परिवृत हो कर सूरिजी रत्नासाह के साथ, शत्रुंजय की ओर रवाना हुए। वहां का स्थानिक संघ भी सूरिजी के साथ हुआ। अन्यान्य संप्रदाय के भी सेंकडों ही आचार्य और हजारों ही साधु-साध्वीयों का समुदाय, **विद्यामण्डनसूरि** के संघ में सम्मिलित हुआ और क्रमशः शत्रुंजय पहुंचा। कर्मा साह बहुत दूर तक सूरिजी के सन्मुख आया और बडी धामधूम से प्रवेशोत्सव कर उन का स्वागत किया। गिरिराज की तलहटी में जा कर सब ने वासस्थान बनाया। अन्यान्य देश-प्रदेशों से भी अगणित मनुष्य इसी तरह वहां पर पहुंचे। लाखों मनुष्यों के कारण शत्रुंजय की विस्तृत अधोभूमि भी संकुचित होती हुई मालूम देने लगी। परन्तु ज्यों ज्यों जनसमूह की वृद्धि होती जाती थी त्यों त्यों कर्मा साह का उदार हृदय विस्तृत होता जाता था। आये हुए उन सब संघजनों को खान, पान, मकान, वस्त्र, सन्मान और दान दे दे कर शक्तिमान् कर्मा साह ने अपनी उत्तम संघभक्ति प्रकट की। दरिद्र से ले कर महान् श्रीमन्त तक के-सभी

संघजनों की उसने एक सी भक्ति की। किसी को, कीसी बात की न्यूनता न रह ने दी।

प्रतिष्ठामहोत्सव में, सब अधिकारी अपने अपने अधिकारानुसार प्रतिष्ठाविधियें करने लगे। वैद्यों, वृद्धों और भीलों आदिकों को पूछ पूछ कर सब प्रकार की वनस्पतियें, अगणित द्रव्य व्यय कर, भिन्न भिन्न स्थानों में से ढूंढ ढूंढ मंगवाई। श्री विनयमण्डन पाठक की सर्वावसर-सावधानता और सर्वकार्यकुशलता देख कर, प्रतिष्ठाविधि के कुलकार्यों का मुख्य अधिकार, सभी आचार्य और प्रमुख श्रावक एकत्र हो कर, उन्हें समर्पित किया। बाद में, गुरुमहाराज के वचन से अपने कुलगुरु आदिकों की यथेष्ट दान द्वारा सम्यग् उपासना कर और सब की अनुमति पाकर कर्मा साह अपने विधिकृत्य में प्रविष्ट हुआ। जब जब पाठकजी ने साह से द्रव्य व्यय करने को कहा तब तब सौ की जगह हजार देने वाले उस उदार पुरुष ने बडी उदारता पूर्वक धन वितीर्ण किया। कोई भी मनुष्य उस समय वहां पर ऐसा नहीं था जो कर्मा साह के प्रति नाराज या उदासीन हों। याचकलोकों को इच्छित से भी अधिक दान दे कर उन का दारिद्र्य नष्ट किया। जो याचक अपने मन में जितना दान मांगना सोचता था, कर्मा साह के मुख की प्रसन्नता देख कर वह मुंह से उस से भी अधिक मांगता था और साह उसे मांगें हुए से भी अधिक प्रदान करता था; इस लिये उस का जो दान था वह 'वचोऽतिग' था। स्थान स्थान पर अनेक मण्डप बनाये गये थे जिन में बहु मूल्य गालीचे, चंद्रोए और मुक्ताफल के गुच्छक लगे हुए थे। लोकों को ऐसा आभास हो रहा था कि सारा ही जगत् महोत्सवमय हो रहा है। आनन्द और कौतुक के कारण मनुष्यों को दिन तो एक क्षण के जैसा मालूम देता था। जलयात्रा के दिन जो महोत्सवं कर्मा साह ने किये थे उन्हें देख

कर लोक शास्त्रवर्णित भरतादिकों के महोत्सवों की कल्पना करने लगे थे।

प्रतिष्ठा के मुहूर्त वाले दिन, स्नात्र प्रमुख सब विधि के हो जाने पर, जब लग्नसमय प्राप्त हुआ तब, सर्वत्र मङ्गलध्वनि होने लगी। सब मनुष्य विकथा वगैरह का त्याग कर प्रसन्न मन वाले हुए। श्राद्धगण में भक्ति का अपूर्व उल्लास फैलने लगा। विकसित वदन और प्रफुल्लित नयन वाली स्त्रियें मंगलगीत गाने लगी। खूब जोर से वादित्र बजने लगे। हजारों भावुक लोग आनन्द और भक्ति के वश हो कर नृत्य करने लगे। सब मनुष्य एक ही दिशा में—एक ही वस्तु तरफ निश्चल नेत्र से देखने लगे। अनेक जन हाथ में धूपदान ले कर धूप ऊडाने लगे। कुंकुम और कर्पूर का मेघ वर्षाने लगे। बन्दिजन अविश्रान्तरूप से बिरुदावली बोलने लगे। ऐसे मङ्गलमय समय में, भगवन्मूर्ति का जब दिव्य स्वरूप दिखाई देने लगा तब, कर्मा शाह की प्रार्थना से और जैन प्रजा की कल्याणाकांक्षा से, राग-द्वेष विमुक्त हो कर **श्रीविद्यामण्डनसूरि** ने, समग्र सूरिवरों की अनुमति पा कर, शत्रुंजयतीर्थपति श्रीआदिनाथ भगवान् की मङ्गलकर प्रतिष्ठा की। उन के और और शिष्यों ने अन्य जो सब मूर्तियें थी उन की प्रतिष्ठा की। **विद्यामण्डनसूरि** बडे नम्र और लघुभाव को धारण करने वाले थे इस लिये ऐसा महान् कार्य करने पर भी उन्हों ने कहीं पर अपना नाम नहीं खुदवाया*। प्रायः उन के बनाये हुए जितने स्तवन हैं उन में भी उन्हों ने अपना नाम नहीं लिखा।

किसी भी मनुष्य को उस कल्याणप्रद समय में कष्ट का लेस

* प्रचीन कालसे यह प्रथा चली आ रही है, कि जो आचार्य जिस प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है उस पर उसका नाम लिखा जाता है।

मात्र भी अनुभव न हुआ। अपने कार्य में कृतकृत्य हो जाने से कर्मा साह के आनन्द का तो कहना ही क्या है परन्तु उस समय औरों के चित्त में भी आनन्द का आवेश नहीं समाने लगा। केवल लोक ही कर्मा साह को इस कार्य के करने से धन्य नहीं समझने लगे परन्तु स्वयं वह आप भी अपने को धन्य मानने लगा। उस समय भगवन्मूर्ति को, उस की प्रतिष्ठा करने वाले विद्यामण्डनसूरि को और तीर्थोद्धारक पुण्यप्रभावक कर्मा साह को—तीनों को एक ही साथ सब लोक पुष्प-पुंजों और अक्षत-समूहों से बधाने लगे। हजारों मनुष्य सर्व प्रकार के आभूषणों से कर्मा साह का न्युंछन कर याचकों को देने लगे। मन्दिर के शिखर पर सुन्ने ही के कलश और सुन्ने ही का ध्वजादण्ड, जिस में बहुत से मणि जडे हुए थे, स्थापित किया गया। बाद में, सूरिवर ने साह के ललाटतल पर अपने हाथ से, विजयतिलक की तरह, संघाधिपत्य का तिलक किया और इन्द्रमाला पहनाई। मन्दिर में निरंतर काम में आने लायक आरती, मंगलदीपक, छत्र, चामर, चंद्रोए, कलश और रथ आदि सुन्ने-चांदी की सब चीजें अनेक संख्या में भेट की। कुछ गांव भी तीर्थ के नाम पर चढाये। सूर्योदय से ले कर सायंकाल तक कर्मा साह का भोजनगृह सतत खुला रहता था। जैन—अजैन कोई भी मनुष्य के लिये किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। पैर पैर पर साह ने क्या याचक और क्या अयाचक सब का सत्कार किया। सैंकडों ही हाथी, घोडे और रथ, सुवर्णाभरणों से भूषित कर कर अर्थिजनों को दे दिये। ज्यों ज्यों याचक गण उस के सामने याचना करते थे त्यों त्यों उस का चित्त प्रसन्न होता जाता था। कभी किसी ने उस के वदन, नयन और वचन में कोई तरह का विकार भाव न देखा। अधिक क्या उस समय कोई ऐसा याचक न था जिसने साधु कर्मा के पास याचना न की हो और पुनः ऐसा भी कोई याचक

न था जिसने पीछे से कर्म (दैव) के आगे याचना की हों—अर्थात् कर्मा साह ने कुल याचकों की इच्छा पूर्ण कर देने से फिर किसी ने अपने नसीब को नहीं याद किया ।

तदनन्तर, जितने सूत्रधार (कारीगर) थे उन सब को सुवर्ण का यज्ञोपवीत, सुवर्ण मुद्रा, बाजुबन्ध, कुण्डल और कंकण आदि बहुमूल्य आभरण तथा उत्तम वस्त्र दे कर सत्कृत किये । अपने जितने साधर्मिक बन्धु थे उन का भी यथायोग्य धन, वस्त्र, अशन, पान, वाहन और प्रियवचन द्वारा विनयवान् साहने पूर्ण सत्कार किया । मुमुक्षुवर्ग जितना था उसे भी वस्त्र, पात्र और पुस्तकादि धर्मोपकरण प्रदान कर अगणित धर्मलाभ प्राप्त किया । इनके सिवा आबाल-गोपाल पर्यंत के वहां के कुल मनुष्यों को भी स्मरण कर कर उस दान वीर ने अन्न और वस्त्र का दान दे दे कर सन्तुष्ट किया ।

विशालहृदय और उदारचित्त वाले कर्मा साह ने इस प्रकार सर्व मनुष्यों को आनन्दित और सन्तुष्ट कर अपने अपने देशमें जाने के लिये विसर्जित किये । आप थोडे से दिन तक, अवशिष्ट कार्यों की समाप्ति के लिये, वहीं ठहरा ।

जिस भगवत्प्रतिमा के दर्शन करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को सौ सौ रुपये टेक्स (कर) के देने पडते थे और जिस में भी केवल एक ही वार, क्षण मात्र, दर्शन कर पाते थे उसी मूर्ति के, पुण्यशाली कर्मा साह ने आपने पास से सुन्ने के ढेर के ढेर राजा को दे कर, लाखो-करोडों मनुष्यों को विना कोडी के खर्च किये, महिनों तक पूर्ण शान्ति के साथ पवित्र दर्शन कराये । सुकर्मी संघपति कर्मा साह की इस पुण्य-राशी का कौन वर्णन कर सकता है ?

श्रीविद्यामण्डनसूरि की आज्ञा को मस्तक पर धारण कर उन के वशवर्ती शिष्य **विवेकधीर** ने संघनायक **श्रीकर्मा साह** के महान् उद्धार की यह प्रशस्ति बनाई है। इस में जो कुछ दोषकणिकायें दृष्टिगोचर हो उन्हें दूर कर निर्मत्सर मनुष्य इस का अध्यायन करें ऐसी विज्ञप्ति है। इस प्रबन्ध के बना ने से मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ हो उस से जन्म-जन्मान्तरों में सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चरित्र की मुझे प्राप्ति हो-यही मेरी एक केवल परम अभिलाषा है। जब तक जगत्में सुर-नरों की श्रेणिसे पूजित शत्रुंजय पर्वत विद्यमान रहें तब तक कर्मा साह के उद्धार का वर्णन करने वाली यह प्रशस्ति भी विद्वानों द्वारा सदैव वांची जाती हुई विद्यमान रहें। वैशाख सुदी सप्तमी और सोमवार के (प्रतिष्ठा के दूसरे) दिन यह प्रबन्ध रचा गया है और **श्रीविनयमण्डन पाठक** की आज्ञा से **सौभाग्यमण्डन** नामक पण्डित ने दशमी और गुरुवार के दिन इस की पहली प्रति लिखी है। ७ ॥ शुभमस्तु ॥

शत्रुंजयतीर्थोद्धार के प्रतिष्ठाता सूरिवर का वंशवृक्ष ।
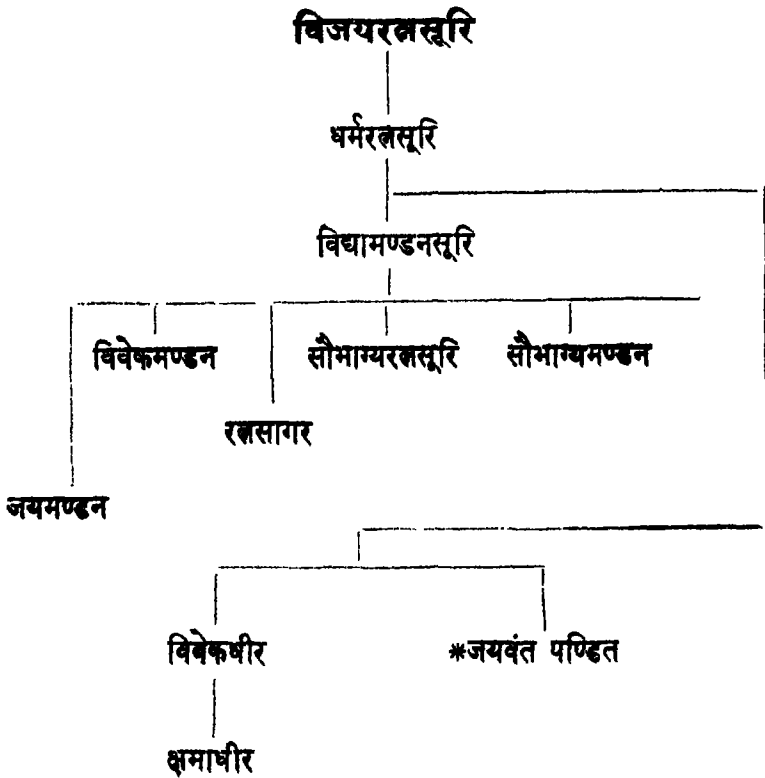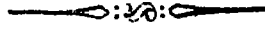
* जयवंत पण्डित ने संवत् १६१४ में गुजराती कवितामें 'शृंगारमंजरी' नामक एक ग्रंथ बनाया है। इस की रचना बहुत ही सरस और सुन्दर है। इस में शीलवती का चरित्र वर्णित है।

कविवर लावण्यसमय की प्रशस्त्यनुसार कर्मा साह का कौटुम्बिक परिवार।
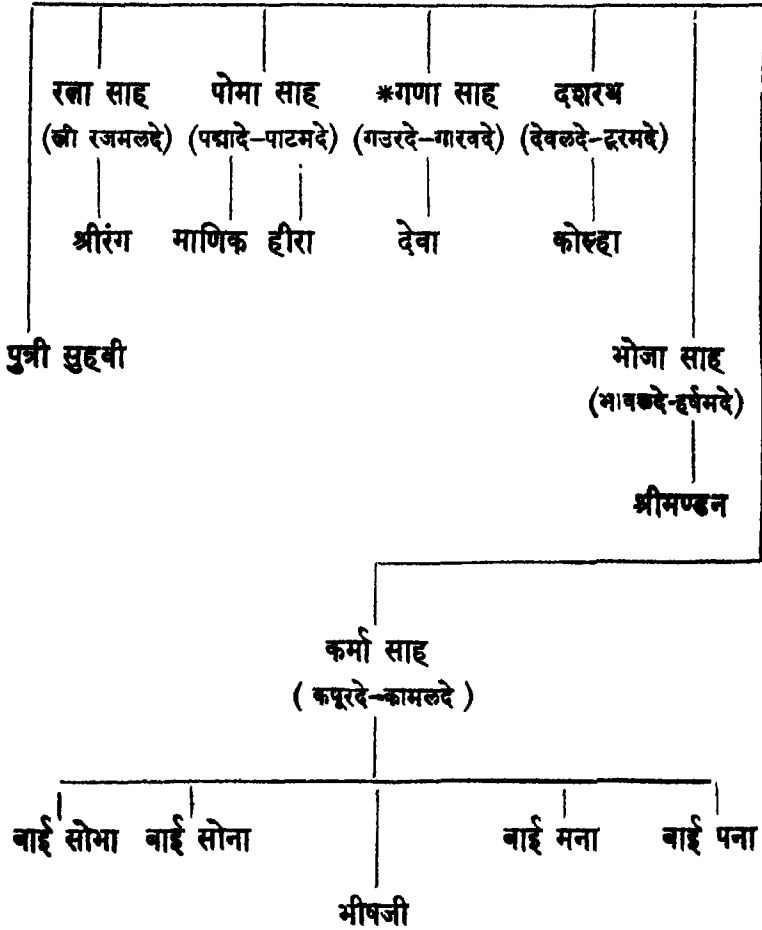
* विवेकधीर गणि ने प्रबन्ध में पांच ही भाइयों का उल्लेख किया है। गणा साह का नाम नहीं लिखा। ईस से ज्ञाता होता है कि प्रतिष्ठा के समय गणा साह विद्यमान न होगा। इस के पहले ही उस का स्वर्गवास हो गया होगा।

परिशिष्ट ।

कर्मा साह के उद्धार की बृहत्प्रशस्ति जो शत्रुंजय के मुख्य मन्दिर के द्वार पर बड़े शिलापट्ट में उकीरी हुई है, इस जगह दी जाती है । इस के कर्ता कविवर लावण्यसमय हैं जिन्हों ने 'विमलप्रबन्ध' नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुस्तक की रचना की है ।
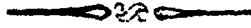
॥ ॐ स्वस्ति श्रीगूर्जरधरित्र्यां पातसाहश्रीमहिमूदपट्टप्रभाकर-पातसाहश्रीमदाफरसाहपट्टोद्‌द्योतकारकपातसाहश्रीश्रीश्रीश्रीश्री बादरसाह विजयराज्ये । संवत् १५८७ वर्षे राज्यव्यापारधुरधंरषान श्रीमझादषान-व्यापारे श्रीशत्रुञ्जयगिरौ श्रीचित्रकूटवास्तव्य दो०करमाकृत–सप्तमो-द्धारसत्का प्रशस्तिर्लिख्यते ॥

स्वस्ति श्रीसौख्यदो जीयाद्युगादिजिननायकः ।
केवलज्ञानविमलो विमलाचलमण्डनः ॥ १ ॥

श्रीमेदपाटे प्रकटप्रभावे
भावेन भव्ये भुवनप्रसिद्धे ।
श्रीचित्रकूटो मुकुटोपमानो
विराजमानोऽस्ति समस्तलक्ष्म्या ॥ २ ॥

सन्नन्दनो दातृसुरद्रुमश्च
तुङ्गः सुवर्णोऽपि विहारसारः ।
जिनेश्वरस्नात्र पवित्रभूमिः

श्रीचित्रकूटः सुरशैलतुल्यः ॥ ३ ॥
विशालसालक्षितिलोचनाभो
रम्यो नृणां लोचनचित्रकारी ।
विचित्रकूटो गिरिचित्रकूटो
लोकस्तु यत्राखिलकूटमुक्तः ॥ ४ ॥
तत्र **श्रीकुम्भराजो**ऽभूत्कुम्भोद्भवनिभो नृपः ।
वैरिवर्गः समुद्रो हि येन पीतः क्षणात्क्षितौ ॥ ५ ॥
[त] त्पुत्रो **राजमल्लो**ऽभूद्राज्ञां मल्ल इवोत्कटः ।
सुतः **सङ्ग्रामसिंहो**ऽस्य सङ्ग्रामविजयी नृपः ॥ ६ ॥
तत्पट्टभूषणमणिः सिंहेन्द्रवत्पराक्रमी ।
रत्नसिंहोऽधुना राजा राजलक्ष्म्या विराजते ॥ ७ ॥
इतश्च **गोपाह्व**गिरौ गरिष्ठः
श्री**बप्पभट्टी**प्रतिबोधितश्च ।
श्री**आमराजो**ऽजनि तस्य पत्नी
काचित्बभूव व्यवहारिपुत्री ॥ ८ ॥
तत्कुक्षिजाताः किलराजकोष्ठा-
गाराह्वगोत्रे सुकृतैकपात्रे ।
श्री**ओशवंशे** विशदे विशाले
तस्यान्वयेऽमी पुरुषाः प्रसिद्धाः ॥ ९ ॥
श्री**सारणदेव**नामा तत्पुत्रो **रामदेव**नामाऽभूत् ।
लक्ष्मीसिंहः पुत्रो (त्रम्) तत्पुत्रो **भुवनपाला**ख्यः ॥ १० ॥
श्री**भोजराज**पुत्रो **ठक्कुरसिंहा**ख्य एव तत्पुत्रः ।
षेताकस्तत्पुत्रो **नरसिंह**स्तत्सु………………… ॥ ११ ॥
तत्पुत्रस्**तोला**ख्यः पत्नी तस्याः (तस्य) प्रभूतकुलजाता ।
तारादेऽपरनाम्नी **लीलूः** पुण्यप्रभापूर्णा ॥ १२ ॥

तत्कुक्षिसमुद्भूताः ष [ट्] पुत्रा [:] कल्पपादपाकाराः ।
[धर्मा] नुष्ठानपराः श्रीव(म)न्तः श्रीकृतोऽन्येषाम् ॥ १३ ॥
प्रथमो र [त्ना] ख्यसुतः सम्यक्त्वोद्द्योतकारकः कामम् ।
श्रीचित्रकूटनगरे प्रासादः [कारितो] येन ॥ १४ ॥
तस्यास्ति कोमला कल्पवल्लीव विशदा सदा ।
भार्या रजमलदेवी पुत्र [:] श्रीरंगनामाऽसौ ॥ १५ ॥
भ्रातान्यः पोमाह्वः पतिभक्ता दानशीलगुणयुक्ता ।
पद्मा–पाटमदेव्यौ पुत्रौ माणिक्य–हीराह्वौ ॥ १६ ॥
बन्धुर्गणस्तृतीयो भार्या गुणरत्नराशिविख्याता ।
गउरा–गारतेदव्यौ पुत्रो देवाभिधो ज्ञेयः ॥ १७ ॥
तुर्यो दशरथनामा भार्या तस्यास्ति देवगुरुभक्ता ।
देवल–[दू] रमदेव्यौ पुत्रः कोल्हाभिधो ज्ञेयः ॥ १८ ॥
भ्रातान्यो भोजाख्यः भार्या तस्यास्ति सकलगुणयुक्ता ।
भावल–हर्षमदेव्यौ पुत्रः श्रीमण्डनो जीयात् ॥ १९ ॥
सदा सदाचारविचारचारुचातुर्यधैर्यादिगुणैः प्रयुक्तः ।
श्रीकर्मराजो भगिनी च तेषां जीयात्सदा सूहविनामधे [या] ॥२०॥
कर्माख्यभार्या प्रथमा कपूरदेवी पुनः कमलदे द्वितीया ।
श्रीभीषजीकः स्वकुलोदयाद्रिसूर्यप्रभः कामलदेविपुत्रः ॥ २१ ॥
श्रीतीर्थयात्राजिनबिम्बपूजापदप्रतिष्ठादिककर्मधुर्याः ।
सुपात्रदानेन पवित्रमात्राः सर्वेदृशाः सत्पुरुषाः प्रसिद्धाः ॥ २२ ॥
श्रीरत्नसिंहराज्ये राज्यव्यापारभारधौरेयः ।

श्रीकर्मसिंहदक्षो मुख्यो व्यवहारिणां मध्ये ॥ २३ ॥
श्रीशत्रुञ्जयमाहात्म्यं श्रुत्वा सद्गुरुसन्निधौ ।
तस्योद्धारकृते भावः कर्मराजस्य तदाऽभूत् ॥ २४ ॥
आगत्य गौर्जरे देशे विवेकेन नरायणे ।
वसन्ति विबुधा लोकाः पुण्यश्लोका इवाद्भुताः ॥ २५ ॥
तत्रास्ति श्रीधराधीशः श्रीमद्बाहदरो नृपः ।
तस्य प्राप्य स्फुरन्मानं पुण्डरीके समाययौ ॥ २६ ॥
राज्यव्यापारधौरेयः षानश्रीमान्मझादकः ।
तस्य गेहे महामन्त्री रवाख्यो नरसिंहकः ॥ २७ ॥
तस्य सन्मानमुत्प्राप्य बहुवित्तव्ययेन च ।
उद्धारः सप्तमस्तेन चक्रे शत्रुञ्जये गिरौ ॥ २८ ॥

श्रीपादलिप्तललनासरशुद्धदेशे
सद्वाद्यमङ्गलमनोहरगीतनादैः ।
श्रीकर्मराजसुधिया जलयात्रिकायां
चक्रे महोत्सववरः सुगुरूपदेशात् ॥ २९ ॥

चञ्चच्चङ्गमृदङ्गरङ्गरचनाभेरीनफेरीरवा–
वीणा[वंश]विशुद्धनालविभवा साधर्मि[वात्सल्य]कम् ।
वस्त्रालङ्कृति[हेम]तुङ्गतुरगादिनां च स[द्व]र्षण–
मेवं विस्तरपूर्वकं गिरिवरे बिम्बप्रतिष्ठापनम् ॥ ३० ॥

विक्रमसमयातीते तिथिमितसंवत्सरेऽश्ववसुवर्षे (१५८७) ।
शाके जगन्निबाणे (१४५३) वैशाखे कृष्णषष्ठ्यां च ॥ ३१ ॥

मिलिताः सूरयः सङ्घा मार्गणा मुनिपुङ्गवाः ।
वहमाने धनुलग्ने प्रतिष्ठा कारिता वरा ॥ ३२ ॥
लावण्यसमयाख्येन पण्डितेन महात्मना ।
सप्तमोद्धारसक्ता च प्रशस्तिः प्रकटीकृता ॥ ३३ ॥

श्रीमद्रा [हदर] क्षितीशवचनादागत्य शत्रुञ्जये
प्रासादं विदधाप्य येन वृ....।...द्बिम्बमारोप्य च ।
उद्धारः किल सप्तमः कलियुगे चक्रेऽथ ना........
जीयादेष सदोशवंशमुकुटः श्रीकर्मराजश्चिरम् ॥ ३४ ॥

यत्कर्मराजेन कृतं सुकार्यमन्येन केनाऽपि कृतं हि तन्नो ।
यन्म्लेच्छराज्ये [ऽपि नृपा]ज्ञयैवोद्धारः कृतः सप्तम एव येन॥३५॥
सत्पुण्यकर्माणि बाहूनि सङ्घे कुर्वन्ति भव्याः परमत्र काले ।
कर्माभिधानव्यवहारिणैवोद्धारः कृतः श्रीविमलाद्रिशृङ्गे ॥ ३६ ॥
श्रीचित्रकूटोदयशैलशृङ्गे कर्माख्यभानोरुदयान्वितस्य ।
शत्रुञ्जये बिम्बविहारकृत्य [कर्मोव] लीयं स्फुरतीति चित्रम् ॥३७॥

श्रीमेदपाटे विषये निवासिनः
श्री कर्मराजस्य च कीर्त्तिरु[ज्ज्वला]।
देशेष्वनेकेष्वपि [सञ्चरत्य] हो
ज्योत्स्नेव चन्द्रस्य नभोविहारिणः ॥ ३८ ॥

दत्तं येन पुरा धनं बहुसुरत्राणाय तन्मानतो
यात्रा येन [नृ] णां च सङ्घपतिना शत्रुञ्जये कारिता ।
साधूनां सुगमैव सा च विहिता चक्रे प्रतिष्ठाऽर्हता–

मित्थं वर्णनमुच्यते कियदहो ? श्रीकर्मराजस्य तु ॥३९॥

येनोद्धारः शुभवति नगे कारितः पुण्डरीके
स्वात्मोद्धारो विशदमतिना दुर्गतस्तेन चक्रे ।
येनाकारि प्रवरविधिना तीर्थनाथप्रतिष्ठा
प्राप्तास्तेन त्रिभुवनतले सर्वदैव प्रतिष्ठाः ॥ ४० ॥

सौम्यत्वेन निशामणिर्दिनमणिस्तीव्रप्रतापेन च
वंशोद्दीपनकारणाद्गृहमणिश्चिन्तामणिर्दानतः ।
धर्माच्छ्राद्धशिरोमणिर्मदविषध्वस्तान्मणिर्भोगिनः
एकानेकमयो गुणैर्नवनवैः श्रीकर्मराजसुधीः ॥ ४१ ॥

दोलासुतः सुतनयो विनयोज्ज्वलश्च
लीलूसुकुक्षिनलिनीशुचिराजहंसः ।
सन्मानदानविदुरो मुनिपुङ्गवानां
सद्वृद्धबान्धवयुतो........कर्मराजः ॥ ४२ ॥

कर्मी श्रीकर्मराजोऽयं कर्मणा केन निर्ममे ? ।
तेषां शुभानि कर्माणि यैर्दृष्टः पुण्यवानसौ ॥ ४३ ॥

श्र्यधीशः पुण्डरीकस्तु मरुदेवा कपर्दिराट् ।
श्राद्धश्रीकर्मराजस्य सुप्रसन्ना भवन्त्वमी ॥ ४४ ॥

श्रीशत्रुञ्जयतीर्थोद्धारे कमठा [य] सानिध्यकारक सा० जइता भा० बाई चाम्पू पुत्र नाथा भ्रातृ कोता ॥ अहम्मदावादवास्तव्य सूत्रधारकोला पुत्र सूत्रधार विरु [पा] सू० भीमा ठ० वेला ठ० बछा ॥ श्रीचित्रकूटादागत सू० टीला सू० पोमा सू० गाङ्गा सू. गोरा सू० ठाला सूत्र०

देवा ॥ सूत्र० नाकर सू० नाइआ सू० गोविंद सू० विणायग सू० टीला सू० वाछा सू० भाणा सू० का [ल्हा] सूत्र० देवदास सू० टीका सू० ठाकर.... प० काला वा० विणाय० । ठा० छाम ठा० हीरा सू० दामोदर वा० हरराज सू० थान ।

मङ्गलमादिदेवस्य मङ्गलं विमलाचले ।
मङ्गलं सर्वसङ्घस्य मङ्गलं लेखकस्य च ॥

पं० विवेकधीरगणिना लिखिता प्रशस्तिः ॥ पूज्य पं० समयरत्न शिष्य पं० लावण्यसमयस्त्रिसन्ध्यं श्रीआदिदेवस्य प्रणमतीतिभद्रम् ॥ श्रीः ॥ ठा० हरपति ठा० हासा ठा० मूला ठा० कृष्णा ठा० का [ल्हा] ठा० हर्षा सू० माधव सू० बाठू ॥ लो सहज ॥

(प्राचीनजैनलेखसंग्रह–नं. १)

* ॥ ॐ ॥ संवत [त्] १५८७ वर्षे शाके १४५३ प्रवर्त्तमाने वैशा [ख] वदि ६ । रवौ ॥ श्रीचित्र [कूट] वास्तव्य श्रीओशवा [ल] ज्ञातीय वृद्धशाखायां दो० नरसिंह सुत दो० [तो] ला भार्या बाई लीलू पुत्र ६ दो० रत्ना भार्या रजमलदे पुत्र श्रीरङ्ग दो० पोमा भा० पद्मादे द्वि० पटमादे पुत्र माणिक हीरा दो० गणा भा० गउरादे [द्वि०] गारवदे पु० देवा दो० दशरथ भा० देवलदे द्वि० दूरमदे

* यह लेख तीर्थपति श्रीआदिनाथभगवान् की मूर्ति की बैठक पर खुदा हुआ है।

पुत्र केहला दो० मोजा भा० भावलदे द्वि० [ह] र्षम- [दे पुत्र श्रीमण्डन] भगिनी [सुह] विदे [वं] धव श्रीमद्राजसभाशृङ्गारहार-श्रीशत्रुञ्जयसप्तमोद्धारकारक दो० करमा भा० कपूरादे द्वि० काम-लदे पुत्र भीषजी पुत्री बाई सोभां बा० सोना बा० मना बा० पना प्रमु-खसमस्तकुटुम्बश्रेयोर्थं शत्रुञ्जयमुख्यप्रासादो- [द्धा]रे श्रीआदिनाथ-बिम्बं प्रतिष्ठापितम् । मं० रवी । मं० नरसिंगसानिध्यात् । प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः ॥ श्रीः ॥

(प्राचीनजैनलेखसंग्रह--नं. २)

*ॐ॥ संवत् १५८७ वर्षे वैशाख [व] दि [६] श्रीओशवंशे वृद्ध-शाखायां दो० तोला भा० बाई लीलू सुत दो० रत्ना दो० पोमा दो० गणा दो० दशरथ दो० भोजा दो० करमा भा० कपूरादे कामलदे पु० भीषजीसहितेन श्रीपुण्डरीकबिम्बं कारितम् । ॥ श्रीः ॥

(प्राचीनजैनलेखसंग्रह--नं. ३)

* यह लेख श्रीपुण्डरीक गणधर की मूर्ति पर लिखा हुआ है ।
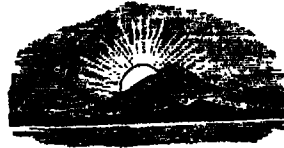
अनुपूर्ति ।

शत्रुंजय के इस महान् उद्धार के समय अनेक गच्छ के अनक आचार्य और विद्वान् एकत्र हुए थे । उन सबने मिल कर सोचा कि जिस तरह अन्यान्यस्थलों में मन्दिर और उपाश्रयों के मालिक भिन्न भिन्न गच्छवाले बने हुए हैं और उन में अन्य गच्छवालों को हस्तक्षेप नहीं करने देते हैं वैसे इस महान् तीर्थ पर भी भविष्य में कोई एक गच्छवाला अपना स्वातंत्र्य न बना रक्खें, इस लिए इस विषय का एक लेख कर लेना चाहिए । यह विचार कर सब गच्छवाले धर्माध्यक्षों ने एक ऐसा लेख बनाया था । इस की एक प्राचीन पत्र ऊपर प्रतिलिपि की हुई मिली है जिस का भावानुवाद निम्न प्रकार है । मूल की भाषा तत्समय की गुजराती है । यह पत्र भावनगर के श्रीमान् सेठ प्रेमचन्द रत्नजी के पुस्तकसंग्रह में है ।

१ श्री तपागच्छनायक श्री श्री श्री हेमसोमसूरि लिखितं । यथा—शत्रुंजयतीर्थ ऊपर का मूल गढ, और मूल का श्री आदिनाथ भगवान् का मन्दिर समस्त जैनों के लिये हैं । और बाकी सब देवकुलिकायें भिन्न भिन्न गच्छवालों की समझनी चाहिए । यह तीर्थ सब जैनों के लिए एक समान है । एक व्यक्ति इस पर अपना अधिकार जमा नहीं सकती । ऐसा होने पर भी यदि कोई अपनी मालिकी साबित करना चाहे तो उसे इस विषय का कोई प्राभाणिक लेख या ग्रंथाक्षर दिखाने चाहिए । वैसा करने पर हम उस की सत्यता स्वीकार करेंगे । लिखा पण्डित लक्ष्मीकल्लोल गणि ने ।

२—तपागच्छीय कुतकपुराशाखानायक श्री विमलहर्षसूरि

लिखितं–यथा........ (बाकी सब ऊपर मुताबिक)........ लिखा भावसुन्दर गणि ने ।

३—श्री कमलकलशसूरिगच्छ के राजकमलसूरि के पट्टधर कल्याण-धर्मसूरि लिखितं–यथा शत्रुंजय के बारे में जो ऊपर लिखा हुआ है वह हमें मान्य है। यह तीर्थ ८४ ही गच्छों का है। किसी एक का नहीं है। लिखा, कमलकलशा मुनि भावरत्न ने ।

४—देवानन्दगच्छ के हारीजशाखा के भट्टाराक श्रीमहेश्वरसूरि लिखितं–यथा (बाकी ऊपर ही के अनुसार) ।

५—श्रीपूर्णिमापक्षे अमरसुंदरसूरि लिखितं– (ऊपर मुताबिक ।)

६—पाटडियागच्छीय श्रीब्रह्माणगच्छनायक भट्टारक बुद्धिसागर-सूरि लिखितं— (ऊपर मुताबिक) ।

७—आंचलगच्छीय यतितिलकगणि और पण्डित गुणराजगणि लिखितं (ऊपर मुताबिक) ।

८—श्रीवृद्धतपागच्छ पक्षे श्रीविनयरत्नसूरि लिखितं ।

९—आगमपक्षे श्रीधर्मरत्नसूरि की आज्ञा से उपाध्याय हर्षरत्न ने लिखा ।

१०—पूर्णिमागच्छ के आचार्य श्रीललितप्रभ की आज्ञा से वाचक वाछाक ने लिखा। यथा–शत्रुंजय का मूल किला, मूल मन्दिर और मूल प्रतिमा समस्त जैनों के लिये वन्दनीय और पूजनीय है। यह तीर्थ समग्र जैन समुदाय की एकत्र मालि-की का है। जो जो जिनप्रतिमा मानते पूजते हैं उन सब का इस तीर्थ पर एक सा हक और अधिकार है। शुभं भवतु जैन संघस्य ।

॥ अर्हम् । ॥

शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारप्रबन्धः ।

(पण्डितश्रीविवेकधीरगणिरचितः ।)

स्वस्ति श्रीवृषभप्रभुः प्रथयतु श्रेयांसि सङ्घेऽनघे
चञ्चत्काञ्चनगौरकान्तिरमराधीशार्च्यपत्पङ्कजः ।
श्रीशत्रुञ्जयशैलमण्डनमणिर्विश्वस्थितेर्दर्शकः
सिद्धिश्रीहृदयङ्गमोऽप्रतिहतप्रौढप्रभावोज्ज्वलः ॥ १ ॥

पुण्डरीकयशा जीयात्पुण्डरीकोऽकदन्तिनाम् ।
पुण्डरीकप्रतिष्ठाकृत् पुण्डरीको गणाधिपः ॥ २ ॥

उद्धारान् भरतादयो नरवराः सिद्धाचलेऽस्मिन् पुरा
चक्रुस्तीर्थपसूरिराजवचनाच्छ्रद्धोल्लसन्मानसाः ।
अस्मादेव सुपुण्यतः शयगताः स्वर्गापवर्गश्रियः
स्युः सम्भाव्य हृदीति सङ्घपतयो भूयांस एवाभवन् ॥३॥

नाभेयस्य गिरार्षभिर्मघवतः श्रीदण्डवीर्यः प्रभो-
रैशानोऽब्धि-शरै-त्रिविष्टपपतिश्रीभावनेन्द्राः स्वतः ॥
भूभर्त्ता सगरोऽजितस्य जगतां भर्त्तुस्तथा व्यन्तरा
भूपश्चन्द्रयशाश्च चन्द्रमुकुटार्हत्पर्ल्लिसद्धर्षवान् ॥ ४ ॥

शान्तेश्चक्रधरो मुनेर्दशरथोऽरी नेमिनः पाण्डवाः

---

१ " सङ्घाय सद्गाङ्गेयामलदेहकान्तिः " इति वा पाठः ।

श्रीसिद्धस्य सुविक्रमः[13] पवित्रिभोः श्रीजावडः शुद्धधीः[14] ।
आचार्यस्य धनेश्वरस्य च शिलादित्यो धराधीश्वरे[15]-
श्चौलुक्योऽपि स बाहडो नृपगुरोः[16] श्रीवस्तुपालो मुनेः[17] ॥ ५ ॥
साधुः श्रीसमराह्वयोऽपि सुगुरो[18]रेते पवित्राशया
उद्धारान् गुरुभक्तितो विदधिरे श्रीपुण्डरीकाचले ।
साधुश्रीकरमाह्वनिर्मितगुरूद्धारस्वरूपं मया
संशृण्वन्त्वभिधीयमानमधुना पीयूषवर्षोपमा ॥ ६ ॥
(त्रिभिर्विशेषकम् ।)

तपापक्षे महत्यस्मिन् गच्छे रत्नाकराह्वये ।
भृगुकच्छीयशाखायां सूरयो भूरयोऽभवन् ॥ ७ ॥
सर्वत्र लब्धविजयास्तत्र श्रीविजयरत्नसूरीन्द्राः ।
समजनिषत भव्याम्बुजविकासने हेलिकेलिभृतः ॥ ८ ॥
तेषां शिष्यमतल्लिकाः समभवन् श्रीधर्मरत्नाभिधाः
सूरीन्द्रा द्रुघणायमानचरिताः शस्यक्रियावत्सु ये ।
स्याद्वादोज्ज्वलहेतिसंहतिहतप्रावादुकप्रीतयः
श्रीरत्नत्रयधारका जितकलाकेलिप्रभावाः कलौ ॥ ९ ॥
सुविहितजनाभिगम्या विशदयशःपूरपूरितदिगन्ताः ।
निहितकुपाक्षिकपक्षा जयन्ति ते धर्मरत्नसूरीन्द्राः ॥ १० ॥
उद्यच्छन्ती विवादाय गिरा सह यदीयया ।
पराजयं सुधा घोषवती न लभतां कथम् ॥ ११ ॥
हृद्घोषे नन्दपद्रेशो गोपो यद्गां दधन्मुदा ।
अमारिपयसा कीर्त्तिकुटुम्बं समपूपुपत् ॥ १२ ॥
येषां पञ्चामन्त्रः सरीसे शैशवेऽपि सिद्धिमदात् ।
वव्रे यानतिसुभगानक्षीणमहानसी लब्धिः ॥ १३ ॥

---

१ हृदयरूपाभीरपल्ल्याम् ।

राजानो विलुठन्ति यत्क्रमतले ये ह्यैरनेकैः श्रिताः
स्तूयन्ते कविभिश्च येऽनवरतं जानन्ति जीवस्थितिम् ।
राजौकःश्रयणात्प्रयाति पदवीमुच्चां हि योऽग्रेकृतो
ह्येन क्वापि विरोधमेति कविना जीवः कथं तैः समम् ॥१४॥

किं बहुना !—

मीयन्ते तद्गुणाः सम्यक् तत्तुल्यैरेव नापरैः ।
व्योममानं धरा वेत्ति धरामानं मरुत्पथः ॥ १५ ॥
तेषां बहुशिष्याणां प्रधानभूतावुभौ विनेयौ तु ।
विद्यामण्डन आद्यो विनयादिममण्डनस्त्वपरः ॥ १६ ॥
योग्यावेतौ क्रमशः पूज्यैराचार्यपाठकौ विहितौ ।
शतशोऽन्यानि प्रतिदिनमनघानि कृतानि कृत्यानि ॥ १७ ॥

अथान्यदा तेऽर्बुदमुख्यतीर्थयात्रार्थमत्यर्थमनूनभावैः ।
अभ्यर्थिताः श्रीधनराजमुख्यैः सङ्घाधिपैः सद्विहगैः प्रचेलुः ॥१८॥
पुरे पुरे निर्मितसुप्रवेशमहोत्सवाः सङ्घयुताः क्रमेण ।
ते चैयरुर्नीवृति मेदपाटे दौस्थ्याऽप्रवेशाय मिलत्कपाटे ॥ १९ ॥
पदे पदे[1] यत्र सरांसि नद्यो वनानि हेलागिरयोऽतिरम्याः ।
धनैश्च धान्यैश्च समृद्धिभाञ्जि वदान्यमान्यानि[2] पुराणि यत्र ॥२०॥
न क्लेशलेशो न रिपुप्रवेशो न दण्डभीतिर्न जनेष्वनीतिः ।
न यत्र कुत्रापि खलावकाशः कदापि नो दुर्व्यसनात्स्वनाशः ॥२१॥
तत्रास्ति शैलः किल चित्रकूटः स्फुरत्पुरर्द्ध्या विजितत्रिकूटः ।
इर्ष्या सुरावासजिगीषयेदं धृतं धनुः किं विगतप्रभदेम्? ॥ २२ ॥

प्रासादाः परमेष्ठिनां रणरणद्घण्टाप्रतिच्छन्दिनः
स्फूर्जद्धैमनकुम्भसङ्गतमहादण्डध्वजोल्लासिनः ।
दूराद्दृक्पथमागताः कलिमलप्रक्षालनं तन्वते

---

१ स्थाने स्थाने । २ धन्यानि ।

शालाः संयमिनां च यत्र मधुरस्वाध्यायघोषोज्ज्वलाः ॥२३॥
युवमनोमृगबन्धनवागुरा स्मरमहीक्षिदमोघशरासनम् ।
नयनपातनिपातितविष्टपो लसति यत्र वधूगण उन्मदः ॥२४॥
वपुःश्रिया धिक्कृतमीनकेतना वनीपकेभ्यः प्रवितीर्णवेतनाः ।
विभान्ति यत्रात्मजयन्तवैभवा युवान उच्चैरधिरूढसैन्धवाः ॥२५॥
यत्राभिसारिणीनामसिते पक्षेऽपि नेहितैः फलितम् ।
स्फाटिकसौधप्रग्रहविघटितभूच्छायनिकुरम्बे ॥ २६ ॥
यत्र च चम्पककेतकपाडलनवमल्लिकासुमवनानि ।
तालतमालरसालप्रियालहिन्तालविपिनानि ॥ २७ ॥
सरांसि यत्रानिलकम्पिताब्जोच्छलद्रजःपुञ्जसुगन्धिकानि ।
अनेककारण्डवकेकिकोकगतागतै रम्यतमानि भान्ति ॥ २८ ॥

किं बहुना ?—

चित्रकूटदिवोर्मध्ये सुरावासकृतैव भित् ।
यद्वा न स्वश्चतुर्वर्गोपायस्तेनांनरान्तरम् ॥ २९ ॥
तत्र त्रिलक्षाश्वपतिर्महीक्षित्साङ्गाभिधानोऽखिलभूमिशास्ता ।
स्वदोर्बलेनाम्बुधिमेखलां गामेकातपत्रामकरोत्प्रभुर्यः ॥ ३० ॥
आकारितोऽनेन विना मिषं न स्थातुं प्रभुर्यामिकवारकेऽहम् ।
इतीव भास्वान् हृदि सम्प्रधार्याऽततक्षदङ्गं किल यद्भयेन ॥३१॥
सावधानतया द्रष्टुं सहस्राक्षोऽभवद्धरिः ।
पलायनैकधीः सम्यग् योद्धुं येन सहाक्षमः ॥ ३२ ॥
अविहितसन्धानानां साङ्गनामा करार्पणे राज्ञाम् ।
शङ्काशङ्कुद्वारं निःसरणे नाप हृद्दाही ॥ ३३ ॥
हेषन्ते हरयो विपक्षसदनोद्भिन्नाङ्कुरैर्मेदुरा
गर्जन्तेऽञ्जनशैलकीर्तिवितातिग्रासोद्धुराः सिन्धुराः ।
व्यालश्यामलमेघघोररसितप्रस्पर्द्धिनः स्यन्दन—

दधाना वेश्मनि यस्य साङ्गनृपतिश्चक्री नवः कोऽप्ययम्॥३४॥
अथामभूपस्य कुले विशाले क्रमादभूत्सारॅण ओशवंशे १ ।
श्रीरामदेवस्तनयस्तदीयो २रामस्य पुत्रोऽपि च लक्ष्मसिंहः३।३५
अथ लक्ष्मसिंहतनयः सत्याढ्यो भुवनपालनामाभूत् ४ ।
श्रीभोजराजनामा५तनयोऽभूद्भुवनपालस्य ॥ ३६ ॥
ठकुरसिंहो भोजा६त्तज्जः खेताभिधश्च तत्सूनुः७ ।
नरसिंहाख्यः साधुः८ क्रमशस्ते [ते] नरोत्तंसाः ॥ ३७ ॥
तोलाभिधानो नरसिंहसूनुः९ साधुः सुधादीधितिशुद्धकीर्त्तिः ।
प्राणप्रिया तस्य च भाग्यभूमिर्लीलू ललामप्रतिमा सतीषु ॥३८॥
साधुस्तोलाभिधः साङ्गभूपस्याभूत्प्रियः सखा ।
अमात्यत्वमनिच्छन् यो लेभे श्रेष्ठिपदं नृपात् ॥ ३९ ॥
स नयी विनयी दाता ज्ञाता मानी धनी भृशम् ।
दयालुर्हृदयालुश्च यशस्वी च महत्स्वपि ॥ ४० ॥
विपरीतलक्षणोदाहरणे धनदं वदन्तु लाक्षणिकाः ।
तोलाख्यस्य वदान्यस्याग्रे भद्रामिवाभद्राम् ॥ ४१ ॥
तोलाह्वेन न केवलमर्थिजनो निर्मितः सदानन्दी ।
सुरशाखिप्रमुखा अपि विमोचिता याचकक्लेशात् ॥ ४२ ॥
गजरथतुरगाभरणस्वर्णलसद्रूप्यरत्नवसनानाम् ।
दानैरर्थिधरास्वम्भोधरलीलायितं तेन ॥ ४३ ॥
जिनधर्ममरालो न व्यमुञ्चत्तस्य मानसम् ।
पद्मोदयकृतोल्लासं परं जाड्यविवर्जितम् ॥ ४४ ॥
तोलाह्वसाधुतनयाः पञ्च पाण्डवविक्रमाः ।
रत्नः१ पोमो२दशरथो३भोजः४कर्म्माभिधः५क्रमात् ॥४५॥
एतेषु पञ्चस्वपि नन्दनेषु प्रशंसनीयेषु सुधर्मकृत्यैः ।

---

१ सारणदेवः ।

कर्मैः कनिष्ठोऽपि गुणैः समग्रैः प्रगीयते ज्येष्ठतया धरायाम्॥४६।
रूपेण कामो विजितः सुराद्रिर्धैर्येण गाम्भीर्यतया सरस्वान् ।
नयेन रामः शशिजश्च बुद्ध्या दानेन कल्पः करमाभिधेन ॥४७॥
अथागतान् सङ्घजनेन सार्द्धं गणाधिपान् साङ्गनृपो निशम्य ।
शिखीव मेघागमने प्रमोदमियाय धर्मश्रवणाभिलाषी ॥४८॥

युक्तः पौरजनै रथेभतुरगातोद्यासनाडम्बरै-
गत्वा पूज्यपदौ प्रणम्य नृपतिः शुश्राव सद्देशनाम् ।
धन्यंमन्य उदारधीश्च सहसा प्रावेशयच्छ्रीगुरू-
नावासांश्च यथार्हमार्पयदसौ सङ्घाय सद्भक्तितः ॥४९॥

तोलाभिधेन ससुतेन समं नरेशः
शुश्राव धर्ममनघं सुगुरोः सदापि ।
आखेटकादिविरतिं वृषमूलभूता-
मङ्गीचकार करुणाविमलस्वभावः ॥ ५० ॥

इतश्च-

द्विजस्तत्रास्त्यसहनो नाम्नैव पुरुषोत्तमः ।
स पूज्यैर्निर्जितो वादे सप्ताहैर्नृपसाक्षिकम् ॥ ५१ ॥

प्रशस्त्यन्तरेऽपि-

"कीर्त्या च वादेन जितो महीयान् द्विधा द्विजो यैरिह चित्रकूटे ।
जितत्रिकूटे नृपतेः समक्षमहोभिरह्नाय तुरङ्गसंख्यैः ॥ ५२ ॥ "
अथ तोलाभिधः श्राद्धः पूज्यान् रत्नत्रयीभृतः ।
निरीक्ष्याप्यायितस्वान्तो गुरुभक्तिं ततान सः ॥ ५३ ॥
अवकाशं समासाद्य लीलूजानिरथैकदा ।
कनीयःसूनुसंयुक्तो गुरून् पप्रच्छ भक्तितः ॥ ५४ ॥
भगवन् ! चिन्तितो मेऽर्थो भविष्यति फलेग्रहिः ।
न वेति सम्यगालोच्य प्रसादं कुरुताधुना ॥ ५५ ॥

श्रुत्वेति ते क्षणं तस्थुर्ध्यानास्तिमितलोचनाः ।
ऊचुश्च शृणु सम्यक् त्वं सज्जनाग्रिम ! सन्मते ! ॥ ५६ ॥
शत्रुञ्जये मूलबिम्बोद्धारचिन्तास्ति ते हृदि ।
वस्तुपालसमानीतदले दलितकिल्बिषे ॥ ५७ ॥

तदानयनस्वरूपं त्वेवम्—

श्रीवस्तुपालेन विधीयमाने शत्रुञ्जये स्नात्रमहोत्सवेऽस्मिन् ।
अनेकदेशागतभूरिसङ्घाधिपैः समं भक्तिभरप्रगुणैः ॥ ५८ ॥
मा मूलबिम्बस्य त्रिकूणिकाया भृङ्गारसङ्घट्टवशाद्विबाधा ।
स्या[1]ज्जातु देवेडिति सम्प्रधार्य पुष्पोच्चयैस्तां पिदधे समन्तात्॥५९॥
(युग्मम्)

तन्मन्त्रिराजोऽपि निरीक्ष्य चित्ते चिन्तां दधेऽवाच्यममङ्गलं चेत् ।
म्लेच्छादिना वा कलशादिना वा स्यान्मूलबिम्बस्य विधेर्नियोगात्
गातिस्तदा सज्जनस्य केति निध्याय मम्माणिखनेरुपायैः ।
इहानिनायाधिपमोजदीनदिल्ल्या विशालाः फलिका हि पञ्च॥६१॥

ततश्च—

दिग्नन्दार्कमितेषु विक्रमनृपात्संवत्सरेषु १२९८ प्रया-
तेषु स्वर्गमवाप वीरधवलामात्यः शुभध्यानतः ।
बिम्बं मौल[3]मथाभवाद्विधिवशान्म्यर्ङ्ग्यं सुभद्राचले-
द्वैःस्तोकैर्गलितैः कदापि न मृषा शङ्का सतां प्रायशः ॥ ६२ ॥

इतश्च—

१-स्तात् । २-मोजदीनाज्ञया तन्मंत्री पुनडो वस्तुपालमित्रं ताः शत्रुञ्जयाद्रौ प्रैषि । तत्रैका ऋषभफलही १ द्वितीया पुण्डरीकफलही २ तृतीया कपर्दिनः ३ चतुर्थी चक्रेश्वर्याः ४ पञ्चमी तेजलपुरप्रासाद-पार्श्वफलही ५ । ३-मुख्यम् । ४-संवत् १३६८ म्लेच्छाज्ञया तदा शत्रुञ्जयभङ्गः ।

आसन् वृद्धतपागणे सुगुरवो रत्नाकराह्वाः पुरा-
ऽयं रत्नाकरनामभृत्प्रववृते येभ्यो गणो निर्मलः।
तैश्चक्रे समराख्यसाधुरचितोद्धारे प्रतिष्ठा शशि-
द्वीपत्र्येकमितेषु १३७१ विक्रमनृपादब्देष्वतीतेषु च ॥६३॥

प्रशस्त्यन्तरेऽपि—

" वर्षे विक्रमतः कुसप्तदहनैकास्मिन् १३७१ युगादिप्रभुं
श्रीशत्रुञ्जयमूलनायकमतिप्रौढप्रतिष्ठोत्सवम्।
साधुः श्रीसमराभिधस्त्रिभुवनीमान्यो वदान्यः क्षितौ
श्रीरत्नाकरसूरिभिर्गणधरैर्यैः स्थापयामासिवान् ॥ १ ॥ "

गुप्ताः फलहिकाः सन्ति वस्तुपालसमाहृताः।
समरोऽकारयद्बिम्बं स्वाहृतेन दलेन तु ॥ ६४ ॥
समरस्थापितं बिम्बं म्लेच्छैः कालेन पापिभिः।
शिरोऽवशेषं विहितं तदद्यापि तथार्च्यते ॥ ६५ ॥
तव चित्तालवालेऽसौ मनोरथसुरद्रुमः।
उप्तोऽस्मिंस्त्वत्सुते किन्तु भविष्यति फलेग्रहिः ॥ ६६ ॥
प्रतिष्ठा समरोद्धारे यथास्मत्पूर्वजैः कृता।
तथैव त्वत्सुतोद्धारेऽस्मद्विनेयैः करिष्यते ॥ ६७ ॥
नारसिंहिरिति श्रुत्वाऽविसंवादि गुरूदितम्।
समं हर्षविषादाभ्यां भावसङ्करमन्वभूत् ॥ ६८ ॥
बबन्ध शकुनग्रन्थिं करमाह्वः कुमारराट्।
शत्रुञ्जयमहातीर्थोद्धारचिन्तां विदन् पितुः ॥ ६९ ॥
यात्रास्नात्रार्चनादीनि श्रीसङ्घोऽपि यथारुचि।
चकार गुरुसाहाय्याद्यात्रां च गुरुसत्तमाः ॥ ७० ॥
ससङ्घा गुरवोऽन्येद्युश्चलनोपक्रमं व्यधुः।
गुरुस्थित्यै च तोलाख्यो निर्बन्धं बहुधाऽकरोत् ॥ ७१ ॥

गुरवो व्याहरन् श्राद्ध ! धर्मकृत्ये विवेक्यपि ।
अन्तरायी भवस्यस्मान् भक्तिजाड्यमहो ! तव ॥ ७२ ॥

भृशं दानं तमालोक्य वत्सलत्वाद्गुरूत्तमाः ।
व्यमुचंस्तत्र विनयमण्डनाभिधपाठकान् ॥ ७३ ॥

उद्यद्विहारिणः पूज्या यात्रार्थं ते प्रतस्थिरे ।
पाठकाश्चित्रकूटेऽपि भव्यसत्वानबूबुधन् ॥ ७४ ॥

तोलादिश्राद्धगणो निकषा पाठकमथोपधानादि ।
विदधे सद्गुरुबुद्धया कुलगुरुरीतिं न च लुलोप ॥ ७५ ॥

रत्नादिकाः श्रीकरमावसानास्तोलात्मजाः शुद्धधियः परेऽपि ।
पेठुः षडावश्यकनन्दतत्त्वभाष्यादिकं प्रीतिपरायणास्ते ॥७६॥

परं कर्माभिधे श्राद्धे पाठकाः श्रीगुरोर्गिरा ।
परमामादधुः प्रीतिं महत्कार्यविधातरि ॥ ७७ ॥

करमाह्वोऽन्यदा प्राह भवद्गुरुवचो विभो ! ।
अविसंवादि तत्रार्थे पूज्यैर्भाव्यं सहायिभिः ॥ ७८ ॥

पाठकेन्द्रास्ततः स्मित्वा सुश्लिष्टं वचनं जगुः ।
विनयादेव विमलगोत्रोद्धारकृतां हितम् ॥ ७९ ॥

चिन्तामणिमहामन्त्रं चिन्तितार्थप्रसाधकम् ।
ददुश्च विधिवत्तस्मै सुचिह्नोदयधारिणे ॥ ८० ॥

सर्वे पाठकपुङ्गवैरथ गिरौ श्रीचित्रकूटाभिधे
ज्ञानध्यानतपःक्रियाभिरनिशं श्राद्धा भृशं रञ्जिताः ।
पीयूषोज्ज्वलया च देशनगिरा धर्मद्रुमाली तथा
सिक्ताभिग्रहपुष्पसञ्चयवती जाता यथा सद्वने ॥ ८१ ॥

स्थित्वा मासान् कतिचन ततः पाठकेन्द्रा विजह्रु–
र्धर्मे लोकानुचित उचिते योजयित्वा यथार्हम् ।

भूयो भूयः करमकुमरं सम्यगामन्त्र्य तीर्थो-
द्धारार्थं ते सुविहितजनेष्वादिमा ये प्रसिद्धाः ॥ ८२ ॥

पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेष्वपि विमलधनं स्थापयित्वागमोक्त-
युक्त्या श्रीधर्मरत्नाभिधसुगुरुमथाधाय चित्ते पवित्रे ।
प्रत्याख्यायाघवृन्दान्यनशनविधिना साधितार्थोऽवसाने
तोलाख्यः श्राद्धमुख्यः सुरसदनसुखान्याससादाऽविषादः ॥८३॥

ततः क्रमेण विगलच्छोका रत्नादयः सुताः ।
रम्येषु स्वस्वकृत्येषूद्युक्ता धोरेयतामधुः ॥ ८४ ॥

कनीयानपि कर्माह्वो वसनव्यवसायवान् ।
सुधर्मव्यसनीमुख्यः सज्जनेषु सदाऽजनि ॥ ८५ ॥

न सेहे महनीयात्मा तनयस्यापि दुर्नयम् ।
दुस्थानां दौस्थ्यमुद्धर्त्तुं स विक्रमपराक्रमः ॥ ८६ ॥

व्यधत्त विधिना स्पर्द्धामप्यनुल्लङ्घयन् विधिम् ।
विधिनिर्मितदौर्विध्यानीश्वरीकृत्य सोऽञ्जसा ॥ ८७ ॥

द्विसन्ध्यमावश्यकमेकचित्तस्त्रिसन्ध्यमर्चा जिनराजमूर्त्तेः ।
कुर्वन् सदा पर्वसु पौषधादिकर्मा हि धर्मं चिरमारराध ॥८८॥

उपार्जयामास हिरण्यकोटीर्महेभ्यकोटीरमणिः सुखेन ।
वणिक्सुतश्रेणिनिषेव्यमाणोऽपापैरुपायैर्नरवाहनोऽन्यः ॥ ८९ ॥

स्वरूपशोभाविजिताप्सरोभ्यामभान्महेभ्यः सुभगः प्रियाभ्याम्।
स रूपशोभाजितकाममानः सदार्थिनां कल्पतरूपमानः ॥९०॥

पुत्रपौत्रप्रपौत्रादिस्वजनालम्बनं हि सः ।
रराज वासव इव स्वर्वासिभिरुपासितः ॥ ९१ ॥

इति करमाह्वः साधितपुरुषार्थो मनसि देवमेव जिनम् ।
श्रीविनयमण्डनं गुरुमस्थापयदमलसम्यक्त्वः ॥ ९२ ॥

शत्रुञ्जयोद्धृतिविधौ विधृतप्रतिज्ञः
स्वप्नेऽपितद्गतमनाः प्रयतः समन्तात् ।
इष्टार्थसाधकमनिन्दितमुत्प्रभावं
धर्म्मामरद्रुममसौ चिरमारराध ॥ ९३ ॥

इति श्रीइष्टार्थसाधकनाम्नि श्रीशत्रुञ्जयोद्धारप्रबन्धे पं॰विवेकधीरगणिकृते वंशादिव्यावर्णनो नाम प्रथम उल्लासः ।

१ चिंतामणिं स खलु मंत्रमथारराध–इति वा पाठः ।

॥ अथ द्वितीय उल्लासः ॥

श्रेयोवनितातिलकः प्रमदवनोल्लासने च वारिधरः।
प्रथयतु मङ्गलमालां पार्श्वस्त्रैलोक्यजनमहितः ॥ १ ॥

इतश्च—

श्रीवनराजस्थापितपत्तननगरेऽत्र गूर्जरात्रायाम् ।
चापोत्कटवरवंशे राजानो विदितकीर्त्तयोऽभूवन् ॥ २ ॥
छत्राधीशा बलिनो वन[1]-योग[2]-क्षेमराज[3]नामानः।
भूयड[4]-वैज्रौ[5] रत्नादित्य[6]ः सामन्तसिंहश्च[7] ॥ ३ ॥
अथ चोलुक्यसुवंशे राजानो मूलराज[8]-चामुण्डौ[9] ।
वल्लभ[10]-दुर्लभ[11]-भीमा[12]ः कर्णो[13] जयसिंह[14]-कुमर[15]नृपौ ॥ ४ ॥
*भूनेताऽजयपालो[16] लघुक्रमान्मूल[17]-भीम[18]-भूपालौ ।
अथ वाघेल्लकवंश्यास्तत्राद्यो वीरधवलनृप[19]ः ॥ ५ ॥
वीसल[20]-र्जुन[21]-सारङ्गदेवा[22] ग्रथिलकर्णक[23]ः ।
सप्ताऽक्षत्रीन्दुवर्षेषु१३५७पत्तने यावनी स्थितिः ॥ ६ ॥
शरयुगनयनसुधाकर१२४५मितेषु वर्षेषु विक्रमाद्दिल्ली ।
लब्धा यवननरेशैः क्रमशस्तेऽमी महावीर्याः ॥ ७ ॥
महिमद[1]-साङ्गरसाही[2] तदनु नृपौ मोज[3]-कुतुब[4]-दीनाह्वौ।
साहब[5]-रुकम[6]-दीनौ सप्तमपट्टे जूआं[7] बीबी ॥ ८ ॥
मोर्जदीनो[8]-ऽलाव[9]दीनो वृद्धो नसरतो[10] नृपः।
ग्यास[11]- मोज[12]-समस[13]दीना जलाल[14]दीनो भूधवः ॥ ९ ॥

---

* क्वचिदजयपालपट्टे त्रिभुवनपालो लिखितोऽस्ति स तु वीरधवलपुरोहितसोमेश्वरकृत-कीर्तिकौमुदीकाव्ये न गणित इत्युपेक्षितः ।

अलावदीनो[15]-वेदाक्षाग्नीन्दुवर्षेषु१३५४विक्रमात् ।
गूर्जरात्राळाभपुरजेताऽभूत्पार्थिवो महान् ॥ १० ॥
कुतुब[16]-सहाब[17]-खसरवाहीनाः[18] श्रीग्यासदीन[19]-महिमुदौ[20] ।
पिरोज[21]-बूबक[22]नृपौ तुगलक[23]-महिमुद[24]शाही च ॥ ११ ॥
दिल्ल्यामेते भूपा अलावदीनाच्च गूर्जरात्रेशाः ।
षण्महिमूदनृपान्ता राज्यविभक्तिस्ततो जज्ञे ॥ १२ ॥
अलावदीनाद्याज्ञप्ताः पत्तनेऽथाधिकारिणः ।
अलू[1]खानः खानखानाँ[2] दफर[3]श्च ततार[4]कः ॥ १३ ॥
पीरोजशाहेः समयेऽथ जज्ञे श्रीगूर्जरात्राभुवि पादशाहिः ।
मुज्जफुराह्वः खगुणाब्धिचन्द्रमितेषु१४३०वर्षेषु च विक्रमार्कात् ।१४।
अहिमदशाहिर्जज्ञे तत आशेष्वब्धिचन्द्रमितवर्षे १४५४ ।
दिग्रसवेदेन्द्वब्दे१४६८ योऽस्थापयदहिमदावादम् ॥ १५ ॥
महिमुन्द[2]-कुतुब[3]दीनौ शाहिमहिमुन्द[4]वेगडस्तदनु ।
यो जीर्णदुर्गचम्पकदुर्गौ जग्राह युद्धेन ॥ १६ ॥
ततो लक्षणसाहित्यज्योतिःसङ्गीतशास्त्रवित् ।
आधारो विदुषां वीरश्रीवरोऽभून्मुजप्फरः ॥ १७ ॥
प्रज्ञाः प्रजा इवापाद्यः प्रजा इव प्रजा अपि ।
शकन्दराद्यः पुत्रा बभूवुस्तस्य भूविभोः ॥ १८ ॥
नयविनयभक्तिशक्तिप्रमुखगुणैरन्वितः पितुश्चेतः ।
अहरच्छकन्दराह्वो जायान्सूनुः प्रजायाश्च ॥ १९ ॥
बाधरनामा तदनुज उद्धरचरितः प्रतापजिततरणिः ।
रिपुहृदये प्रलयानल इवोदितः साहसी सततम् ॥ २० ॥
श्रुतपूर्वराजनन्दनचरितो वसुधानिरीक्षणव्यसनी ।
कतिचनपरिचारकजनसमन्वितो निर्ययौ सदनात् ॥२१॥
पुरनगरपत्तनान्याक्रामन् विक्रमधनः क्रमेणैषः ।

श्रीचित्रकूटदुर्गे जगाम तद्भूपविहितबहुमानः ॥ २२ ॥
करमेभ्येन सहास्याभवदतिसौहार्दमंशुकः क्रयणात्।
प्रियवचनाशनवसनैरेनं करमोऽपि बहु मेने ॥ २३ ॥
स्वप्नेऽन्यदा गोत्रसुरीगिरेभ्यः स्वेष्टार्थसिद्धिं प्रविभाव्य तस्मै ।
वितीर्णवान् टङ्ककलक्षमाशूद्यताय गन्तुं पथि शम्बलार्थम् ॥ २४ ॥
आजीवितं मित्रवराधमर्णोऽहं ते, वदन्तं त्विति कर्म आह।
न वाच्यमित्थं प्रभवो हि यूयं भृत्यः कदापि स्मरणीय एषः ॥२५॥
सुलब्धराज्येन वचोमदीयमेकं विधेयं भवता प्रयत्नात् ।
शत्रुञ्जये स्थापनरूपमङ्गीचकार तद्बाधरशाहिराशु ॥ २६ ॥
अथ प्रतस्थे करमं ततोऽनुज्ञाप्याधिपो गूर्जरमण्डलस्य ।
सर्वसहायाः कुतुकानि सर्वसहो ह्यपश्यद्दिवसैः कियद्भिः ॥ २७ ॥
मुजफ्फरो भूमिधवोऽवसाने शकन्दरं राज्यधरं चकार ।
सं नीतिशालीति खलैर्निजघ्ने स्तोकैरहोभिर्महिमुन्दकोऽपि ॥२८॥
वृत्तान्तमाप्तप्रहितं निशम्य विदेशगो बाधरशाहिरेनम् ।
प्रत्यावृतश्चम्पकदुर्गमाप तदैव राज्ये विनिविष्ट एव ॥ २९ ॥
श्रीविक्रमार्काद्गुणदिक्शरेन्दुमितास्वतीतासु समासु१५८३ जज्ञे ।
राज्याभिषेको नृपबाधरस्य प्रोष्ठद्वितीयादिवसे गुरौ च ॥ ३० ॥
स्वामिद्रोहपरायणाः खलजनाः केचिद्धता उद्धृताः
केचिन्निर्विषयीकृता विदलिताः केचिच्च बन्दीकृताः ।
केचित्केचन लुण्टिता निगडिताः केचित्पदं त्याजिता
राज्यं बाधरशाहिना श्रितवताऽहन्येव तस्मिन्नथ ॥ ३१ ॥
श्रीमद्बाधरभूपतेः प्रसरति स्फीते प्रतापाब्जिनी-
प्राणेशे प्रपलायितं रिपुतमस्तोमेन मूलादपि ।
दस्यूलूककुलेन भीतितरलेनाहो निलीय स्थितं

---

१ चित्रकूटात् । २ शकन्दर ।

सचक्रैर्मुदितं द्विजिह्वमदनेनालं विलीनं जवात् ॥ ३२ ॥
दुःखशुष्यद्रिपुप्राणतृणसन्धुक्षितः क्षणात् ।
वव्रधेऽस्य प्रतापाग्निर्वन्दीश्वासानलेरितः ॥ ३३ ॥
अकरोद्गोत्रसंहारं यत्सुरेशेरितः पविः ।
श्रीबाधरप्रतापाग्नौ वर्णलोपमवाप तत् ॥ ३४ ॥
बाधरसमरेऽरीणां दत्ताः प्राणास्तृणैर्वदननिहितैः ।
तैर्भुक्तैर्धेनूनां भवति पयश्चित्रमत्र कथम् ॥ ३५ ॥
बाधरभूपतिदृक्पथमुपेत्य कुशलेन गेहमायातैः ।
भूपैर्वर्द्धापनिका निरन्तरं तन्यते भीतैः ॥ ३६ ॥
उपकारिणमपकारिणमेष च सस्मार विस्फुरत्तेजाः ।
सुरतरुरेकस्याभूदशनिनिपातः परस्परम् ॥ ३७ ॥
आह्वयच्च सुकर्माणमथ कर्मेभ्यमादरात् ।
स्मरन्नुपकृतिं तस्य स कृतज्ञशिरोमणिः ॥ ३८ ॥
आगात्किलाकारितमात्र एवोपदीकृतानेकसुवस्तुशैलः ।
कर्मस्ततो बाधरभूमिपालोऽप्युत्थाय दोर्भ्यां च तमालिलिङ्ग ॥३९॥
तुष्टाव बाढं परिषत्समक्षमहो ! ममायं परमो वयस्यः ।
कदर्थितं प्राग्दुरवस्थया मां समुद्दधाराशु दयालुरेषः ॥४०॥
न्यवारयद्भूपमिति ब्रुवाणं कर्म्मेभ्य आप्यायितचित्तवृत्तिः ।
अलं भरं वोढुमधीश! नैतावन्तं जनोऽयं बत भृत्यमात्रः ॥ ४१ ॥
आवासान् करमाय बाधरधराधीशोऽप्यथादापयत्
सन्मान्य प्रवरांशुकाभरणसत्ताम्बूलदानादिना ।
नत्वा देवगुरून् वितीर्य बहुधा स्वं याचकेभ्यो नृप-
प्रत्तावासमथाससाद स महेभ्योऽप्युत्सवैर्भूरिभिः॥ ४२ ॥
श्रीसोमधीरसुगणिं निकषा धर्मोपदेशमश्रौषीत् ।

---

१ अविमेष इत्यर्थः ।

आवश्यकादिकृत्यं चकार नित्यं महेभ्योऽसौ ॥ ४३ ॥

अथ च—

विद्यामण्डनसूरीन्द्रान् पाठकेन्द्रानपि स्फुटम् ।
स उद्दिश्यालिखत्पत्रं प्रणामागमसूचकम् ॥ ४४ ॥
उपभूपं स्वयं तस्थौ सावधानमनाः सुधीः ।
पूजाप्रभावनासङ्घवात्सल्यादिपरायणः ॥ ४५ ॥
अथ देयं ददौ द्रव्यं भूपोऽपीभ्याय सत्वरम् ।
इभ्योऽपि धर्मपत्रे तदलिखत्तत्क्षणादपि ॥ ४६ ॥

तुष्टोऽन्यदा बाधरशाहिराह वयस्य! किं ते प्रियमाचरामि ।
मन्मानसप्रीतिकृते समृद्धदेशादिकं किञ्चिदितो गृहाण ॥ ४७ ॥
ततो महेभ्यः समुवाच वाचं शत्रुञ्जयोद्धारपरीतचेताः ।
भवत्प्रसत्त्या मम सर्वमस्ति किन्त्वेतदीहे महसां निधान! ॥ ४८ ॥
संस्थापनीया मयकास्ति शत्रुञ्जयाचले गोत्रसुरी विशाला ।
आज्ञां प्रयच्छाधिप! तन्निमित्ता अभिग्रहाः सन्ति ममापि तीव्राः ॥४९॥
पुरापि किञ्च प्रतिपन्नमासीच्छ्रीचित्रकूटे भवता नरेश ! ।
मामुत्कलाप्य व्रजता विदेशमुपस्थितोऽयं समयोऽधुना सः ॥ ५० ॥
श्रुत्वेति वाचं निजगाद शाहिर्यद्रोचते ते कुरु तद्विशङ्कम् ।
गृहाण मे शासनपत्रमेतन्न कोऽपि भावी प्रतिबन्धकोऽत्र ॥ ५१ ॥
ततोऽह्नि शुद्धे करमश्चलोपादाय तच्छासनपत्रमाशु ।
सुवासिनीभिः कृतमङ्गलश्च प्रवृद्धरागः शकुनैर्वरेण्यैः ॥ ५२ ॥
आतोद्यनादध्वनितान्तरिक्षः प्रगीतकीर्त्तिः पथि बन्दिवृन्दैः ।
पौरैः परीतो गजवाजिराजरथाधिरूढैः परितो रथस्थः ॥ ५३ ॥
धनैर्मुदाऽऽसार इवाभिवर्षन् सूर्यादपि स्फीतमरीचिजालः ।
भ्राजिष्णुरिन्द्रादपि वैभवेन शुद्धः सुधादीधितितोऽपि सौम्यः॥५४॥
चैत्येषु चैत्येषु पुरे पुरे च स्नात्रार्चनादीन्यमलानि तन्वन् ।

शालासु शालासु च साधुवर्गं सन्मानयन् सद्वसनान्नपानैः ॥ ५५॥
स्वैरुद्धरन् दुस्थितदीनलोकान्निवारयन् शाकुनिकादिवर्गम् ।
त्यजन्निषिद्धाचरणानि धर्मकृत्यानि सर्वाणि समाचरंश्च ॥ ५६ ॥
(पञ्चभिः कुलकम्)

स्तम्भतीर्थमधिगत्य सत्पुरं पौरलोकविहितोत्सवः क्रमात् ।
पार्श्वनाथमभिनूय तत्र सीमन्धरं च परमां मुदं दधे ॥ ५७ ॥
तत उपेत्य स पौषधसद्मानि प्रमदजोद्गमणाञ्चितविग्रहः ।
विनयमण्डनपाठकसत्तमान्समभिवन्द्य कृती न्यवदत्तदा ॥ ५८ ॥
फलवदद्यतनं दिनमीशितर्मतिजितभूगुरो! सुगुरो! मम ।
सुविहिताचार्यभवच्चरणाम्बुजप्रणतितो जितमन्मथभूपते! ॥ ५९ ॥
त्वयि भवो भगवन्न पुनर्भवो न मदनो मदनोऽपि मदोऽमदः ।
जनमिमं तु समुद्धर दुर्गतौ परिपतन्तमनन्यगतिं हहा ॥ ६० ॥
पूज्यैः पुराऽऽश्लिष्टतयोदितं यत्तत्साम्प्रतं स्पष्टतया विधेयम् ।
समस्तशास्त्रार्थविचारदक्षैः क्रियासु योग्यासु कृतावधानैः ॥ ६१ ॥
समुद्धृतिः प्राकृतवस्तुनोऽपि पुण्याय लोकैरुपदिश्यते चेत् ।
जिनेन्द्रबिम्बस्य कथं न शत्रुञ्जयाचले सा हि महोदयाय ॥ ६२ ॥
अथवा महतामियं कथं परिहासाय न धृष्टता मम ।
भवतामुपदेश एष चेद्भवतामेव पुनः समर्प्यते ॥ ६३ ॥
वाक्यावसानेऽथ च पाठकेन्द्रा मनाक् स्मितो नोत्तरयाम्बभूवुः ।
धर्मोपदेशेन यथोचितेन जन्तूनशेषान् समबूबुधंश्च ॥ ६४ ॥
कर्माख्यमाहुर्विधिविज्ञ ! धर्मकृत्ये त्वया द्राक् यतनीयेमव ।
ज्ञास्यामहे चावसरे वयं तूपेक्षां शुभे कर्मणि के हि कुर्युः ॥ ६५ ॥
वक्तृवैशिष्ट्यतो व्यङ्ग्यविद्विज्ञाततदागमः ।
गुरून् नत्वाऽचलत्कर्मो गृहीतनृपशासनः ॥ ६६ ॥

---

१ करमस्येतिशेषः । तद्भाषणान्ते–इति वा पाठः ।

अहोभिः पञ्चषैरद्रिरगान्नेत्रपथातिथिः ।
कर्मस्य हृदयानन्दी महातीर्थाह्वयो यतः ॥ ६७ ॥
वीक्षणाच्छैलराजस्य सोऽभूदानन्दमेदुरः ।
स्तनयित्नोः शिखण्डीव चलचक्षुर्विधोरिव ॥ ६८ ॥
वर्द्धाप्य स्वर्णरजतपुष्पै रत्नैः फलैरपि ।
सन्तोष्य मार्गणान् दानैर्गिरये स नमोऽकरोत् ॥ ६९ ॥
"चिराद् दृष्टोऽसि शैलेन्द्र! कल्पद्रुरिव कामदः ।
दर्शनस्पर्शनाभ्यां हि पापव्यापहरः परः ॥ ७० ॥
कल्पादौ हि न सङ्कल्पो ममाल्पैहिककामदे ।
ऐहिकामुष्मिकसुखयच्छके त्वयि वीक्षिते ॥ ७१ ॥
स्वर्गादिसौख्यनिःश्रेणिर्दुर्गत्योकोदृढार्गला ।
चिरं जय! गिरीन्द्र! त्वं परमं पुण्यमन्दिरम् ॥ ७२ ॥
चिन्तामण्यादिवस्तूनि न मुञ्चन्ति तवाश्रयम् ।
यदर्थं क्लिश्यते लोकैराराधनपरैश्चिरम् ॥ ७३ ॥
प्रदेशे हि तवैकैकेऽनन्ताः सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
न विद्यते परं त्वत्तः पुण्यक्षेत्रं त्रिविष्टपे ॥ ७४ ॥
अस्तु वा प्रतिमा माऽस्तु केवलस्त्वं नगाधिपः ।
भिनत्स्येनांसि लोकानां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ७५ ॥
जिनः सीमन्धरो मर्त्यान् भारतान् वर्णयत्यलम् ।
त्वां विहाय बुधाः प्राहुः कारणं तत्र नापरम् " ॥ ७६ ॥
इति स्तुत्वाञ्जलिं बद्ध्वा पुनर्नत्वाऽग्रतोऽचलत् ।
अकल्पयदसौ वासं पद्यामादिपुरस्य च ॥ ७७ ॥

---

१ महातीर्थं शत्रुञ्जयस्य नाम। २ आदिपुरपद्यां हि सूत्रधारादीनां सुखार्थं, ततश्च जनसमूहे मिलिते जलादिसौलभ्यार्थं पादलिप्ते स्थितः। तदपेक्षया ' पादलिप्ताख्यसत्पुरे ' इति पाठः ।

म्लेच्छस्वभावाच्च मयादखानः कालुष्यमन्तर्भृशमादधानः ।
सौराष्ट्रभुक् स्वप्रभुशासनात्तु नालं निषेद्धुं करमाय जज्ञे ॥ ७८ ॥
श्रीगूर्जरवंशीयै रविराज-नृसिंहवीरवर्यैश्च ।
कर्मस्य धर्मकृत्ये बहुधा साहाय्यमत्र कृतम् ॥ ७९ ॥
श्रीस्तम्भतीर्थादथ पाठकेन्द्राः सुसाधुसाध्वीपरिवारयुक्ताः ।
उद्दिश्य यात्रां विमलाचलस्य तत्रैयरुः प्रीणितसाधुवर्गाः ॥ ८० ॥
गुर्वागमनात्प्रीतिं करमः परमां दधे विशुद्धमतिः ।
द्विगुणीभूतोत्साहो मङ्गलकृत्यानि विदधे च ॥ ८१ ॥
अथ समरादिगोष्ठिकवर्गान् पाठकवराः समाकार्य ।
श्रीवस्तुपालसचिवानीतदले याचयामासुः ॥ ८२ ॥
तानुपास्य करमो गुरोर्गिरा प्रार्थिताधिकधनार्पणादिना ।
ते दले हि समुपाददे मुदाऽन्यान्यपि स्वककुटुम्बहेतवे ॥ ८३ ॥
विवेकतो मण्डनधीरसंज्ञौ शिष्यौ क्रमात्पाठकपण्डितौ हि ।
पूज्यैर्नियुक्तावथ सूत्रधारशिक्षाविधौ वास्तुसुशास्त्रविज्ञौ ॥ ८४ ॥
शुद्धान्नपानानयनादिकार्ये शिष्याः क्षमाधीरमुखा नियुक्ताः ।
भूयांस आनन्दपराः परे तु षष्ठाष्टमादीनि तपांसि तेनुः ॥ ८५ ॥
रत्नसागरसंज्ञस्य जयमण्डनकस्य च ।
षाण्मासिकतपोनन्दिर्जज्ञे शासननन्दिकृत् ॥ ८६ ॥
व्यन्तरादिकृतान् घोरानुपसर्गाननेकशः ।
पाठकाः शमयामासुः सिद्धचक्रस्मृतेः क्षणात् ॥ ८७ ॥
तपोजपक्रियाध्यानाध्ययनादिक्रियाणकैः ॥
अर्जयन्तो भूरिलाभं तेऽशुभन् धर्मसार्थपाः ॥ ८८ ॥
सुखासिकाभिर्विविधाभिराशु भोज्यैश्च साज्यैः ससितैः पयोभिः ।
स सूत्रधारान् करमोऽपि नित्यमावर्जयामास वदान्यधुर्यः ॥ ८९ ॥

---

१ बाधरशासनात् ।

शतशः सूत्रधारास्ते यद्यदीषुर्यदा यदा ।
तत्तदानीतमेवाग्रेऽपश्यं श्रीकर्मसाधुना ॥ ९० ॥
कर्मेणावर्जितास्ते तु सूत्रधारास्तथा यथा ।
चक्रुर्मासविधेयानि कार्याणि दशभिर्दिनैः ॥ ९१ ॥
प्रतिमावयवानां तैर्विभागा वास्तुदर्शिताः ।
यथास्थानं समुत्कीर्णाश्चतुरस्राकृतिस्थितेः ॥ ९२ ॥
अपराजितशास्त्रोक्ततालालक्षणलक्षितः ।
उत्तुङ्ग आयकुशलैः प्रासादो[1] विदधेऽद्भुतः ॥ ९३ ॥
क्रमेण च सुनिष्पन्नप्रायास्तु प्रतिमास्तथा ।
मुहूर्तनिर्णयः[2] कर्तुमारेभे शास्त्रकोविदैः ॥ ९४ ॥
मुनयो वाचनाचार्या विबुधा अपि पाठकाः ।
सूरयो गणयोऽनेके देवतादेशशालिनः ॥ ९५ ॥
गणकाश्च निमित्तज्ञा ज्ञानविज्ञानकोविदाः ।
सर्वतोऽपि समाहूताश्चक्रुस्ते दिननिर्णयम् ॥ ९६ ॥
(युग्मम्)

वैशाखमासेऽसितषष्ठिकायां वारे रवौ भे श्रवणाभिधे च ।
इदं मुहूर्त्तं जिनराजमूर्त्तेः संस्थापनाया उदयाय वोऽस्तु ॥ ९७ ॥

इति वाक्यावसाने तान् समभ्यर्च्य यथोचितम् ।
कुङ्कुमाक्ताह्वानपत्र्यः प्राहिणोत्स दिशो दिशम् ॥ ९८ ॥

प्राच्यामपाच्यां दिशि च प्रतीच्यां सम्प्रेषितास्तेन जना उदीच्याम् ।
श्रीपूज्यविद्यादिममण्डनानामाकारणाय प्रहितश्च रत्नैः[3] ॥ ९९ ॥

अङ्गेषु बङ्गेषु कलिङ्गकेषु काश्मीरजालन्धरमालवेषु ।

---

१ मूलप्रासादस्तु चिरन्तन एव तत्र जीर्णोद्धारः कारितो देवकुलिकाश्चोद्धृताः । २ प्रतिष्ठामूहूर्त्तस्य प्रारेभे निर्णयो बुधैः—इति वा पाठः । ३ ज्येष्ठभ्राता ।

वाहीकवाल्हीकतुरुष्ककेषु श्रीकामरूपेषु मुरुण्डकेषु ॥ १०० ॥
वैद्येषु साल्वेषु च तायिकेषु सौवीरसत्यग्रथकेरलेषु ।
कारूपभोटेषु च कुन्तलेषु लाटेषु सौराष्ट्रसुमण्डलेषु ॥१०१॥
श्रीगूर्जरात्रासु मरुष्वथापि ये सन्ति लोका मगधेषु तेऽपि ।
आकारिताः कर्ममहेभ्यः के नानाकारिताश्चाययुरुत्सवेऽस्मिन्॥१०२
(त्रिभिः कुलकम्)
गजाधिरूढास्तुरगाधिरूढा रथाधिरूढा वृषभाधिरूढाः ।
अभ्याययुः सारसुखासनाधिरूढा नराः सत्करभाधिरूढाः ॥१०३॥
विद्यामण्डनसूरीन्द्रान् रत्नसाधुरुपेत्य च ।
नत्वा स्तुत्वोल्लसद्भक्तिः ससङ्घाश्च न्यमंत्रयत् ॥ १०४ ॥
पूज्याः प्राहुर्महाभाग ! पुरा पार्श्वसुपार्श्वयोः ।
चित्रकूटाचले चैत्यं व्यधायि भवताद्भुतम् ॥ १०५ ॥
आहूतैरपि निर्बन्धादस्माभिस्तत्र नागतम् ।
विवेकमण्डनेनास्माच्छिष्येण तत्प्रतिष्ठितम् ॥ १०६ ॥
चेतोऽस्माकं पुराप्यासीच्छत्रुञ्जयगिरिं प्रति ।
सोत्कण्ठमधुना तत्तु त्वरां धत्ते विशेषतः ॥ १०७ ॥
ततः सरत्नसङ्घाः श्रीविद्यामण्डनसूरयः ।
शिष्यसौभाग्यरत्नानूचानादिमुनिमण्डिताः ॥ १०८ ॥
परःशतैः सूरिराजैरन्यैः पाठकपण्डितैः ।
सहस्रसंख्यैर्मुनिभिः पूज्यत्वेन पुरस्कृताः ॥ ११० ॥
कृतोत्सवाश्च कर्मेणायातेनाभिमुखं भृशम् ।
विहरन्तः क्रमेणाद्रेर्व्यभूषयन्नुपत्यकाम् ॥ १११ ॥
लक्षाभिर्मानुषाणां सा भूरभूदतिसङ्कटा ।
कर्मेभ्यस्य परं वक्षो विपुलं समजायत ॥ ११२ ॥
सङ्घस्य विपुलां भक्तिं शक्तिमान् स व्यधाद्धनी ।

अन्नपानवरावासासनसन्मानदानतः ॥ ११३ ॥
सुस्फुराः स्वाभिधावच्च कृतास्तदधिकारिभिः ।
प्रतिष्ठाविधयः सर्वे न्यासमुद्राविशारदैः ॥ ११४ ॥
भिषग्भ्यश्च पुलिन्देभ्यो ज्ञात्वा वृद्धेभ्य आदरात् ।
स ओषधीः समाजह्रेऽगणितद्रविणव्ययः ॥ ११५ ॥
कृत्येषु सर्वेष्वपि सूरिवर्यैः क्रमेण च श्राद्धजनैश्च सर्वैः ।
श्रीपाठकेन्द्राः सुभगाः प्रमाणीकृताः समस्तक्षणसावधानाः ॥११६॥
सर्वान् ततः कुलगुरून् वचसा गुरूणां
दानीयमन्यमपि सम्यगुपास्य लोकम् ।
तेषां वरामनुमतिं समवाप्य कर्मः
प्रावर्त्तत प्रवरकृत्यविधौ विधिज्ञः ॥ ११७ ॥
यदा यदा पाठकपुङ्गवैः कृती धनव्यये तद्धितवाञ्छयेरितः ।
तदा तदानन्दमवाप सोऽञ्जसा पदे शतस्यापि सहस्रयच्छकः॥ ११८।
नाऽकोपि दानेन किलातिकर्ण्णे केनापि तस्मिन् सहनप्रधाने ।
वनीपकेनेहिततोऽधिकानि प्रयच्छति प्रीणितजन्तुजाते॥११९॥
यदर्थितुं चेतसि मार्गणैर्धृतं तदस्य संवीक्ष्य मुखप्रसन्नताम् ।
गिराधिकं याचितमाप्तमाश्रितोऽधिकं च तद्दानमतो वचोऽतिगम् ॥
नानावर्णसुभक्तिशालिविशदोल्लोचप्रभाभासुरा
मुक्ताजालविभूषिता मणिगणाढ्यैः कन्दुकैरञ्चिताः ।
सद्वातायनपङ्क्तिसङ्गतमरुत्प्रेङ्खोलितोद्यद्ध्वजाः
प्रोत्तुङ्गाः पटमण्डपा जवनिकासंच्छादिता रेजिरे॥ १२१ ॥
तदानन्दमयं विश्वमभवच्च महोमयम् ।
क्षणा इव दिना जाता लोकानां कुतुकेक्षणात् ॥ १२२ ॥
सूर्यकुण्डं ततो मुख्यमघसङ्घातघातकम् ।

---

१ विच्छित्ति ।

त्र्यक्षीचक्रेऽर्चकैर्हृद्वैरिभ्यदानवशीकृतैः ॥ १२३
जलयात्रादिने तेनोत्सवा ये च वितेनिरे ।
भरताद्युत्सवानां ते निदर्शनपदेऽभवन् ॥ १२४ ॥
अथ निर्णीते दिवसे स्नात्रप्रमुखेऽखिले विधौ विहिते ।
प्राप्ते च लग्नसमये प्रसरति सति मङ्गलध्वाने ॥ १२५ ॥
सर्वेषु प्रसन्नीभूतेषु जनेषु मुक्तविकथेषु ।
श्राद्धगणेषु समन्ताद्भक्तिभरोल्लसितचित्तेषु ॥ १२६ ॥
गायन्तीष्वतिहर्षोच्छ्राद्धीषूत्फुल्लनयनवदनासु ।
आतोद्येषु च नदत्सु च नृत्यत्सु च भव्यवर्गेषु ॥ १२७ ॥
विस्फारितनयनाम्बुजमविरतमीक्षत्सु सकललोकेषु ।
अहमहमिकया घव्यां धूपेषूत्क्षिप्यमाणेषु ॥ १२८ ॥
विकसत्कुसुमामोदैर्निभृतं सुरभीकृतासु काष्ठासु ।
वर्षन्तीषु च कुङ्कुमकर्पूराम्भःसु धारासु ॥ १२९ ॥
बन्दिषु पठत्सु भोगावलीषु विलसत्सु विजयशङ्खेषु ।
सङ्क्रान्तेषु च मूर्त्तौ सुरेषु पूज्यानुभाववशात् ॥ १३० ॥
कर्मभ्याभ्यर्थनयोपकारबुद्ध्या च विश्वलोकानाम् ।
रागद्वेषविमुक्तैरनुमत्या निखिलसूरीणाम् ॥ १३१ ॥
श्रीऋषभमूलबिम्बे श्रीविद्यामण्डनाह्वसूरिवरैः ।
श्रीपुण्डरीकमूर्त्तावपि प्रतिष्ठा शुभा विदधे ॥ १३२ ॥
(अष्टभिः कुलकम्)

नालीलिखंश्च कुत्रापि हि नाम निजं गभीरहृदयास्ते ।
प्रायः स्वोपज्ञेषु च स्तवेषु तैर्नाम न न्यस्तम् ॥ १३३ ॥
सङ्ग्रहश्लोकश्चात्र—
स्वस्ति श्रीनृपविक्रमाज्जलधिदिग्बाणेन्दुवर्षे१५८७शुभे

---

१ तदा मूलनायकप्रतिमया सप्त श्वासोच्छ्वासाः कृताः ।

मासो माधवसंज्ञिकस्य बहुले पक्षे च षष्ठ्यां तिथौ ।
वारेऽर्के श्रवणे च भे प्रथुपदाद्रौ साधुकर्मोद्धृतौ
विद्यामण्डनसूरयो वृषभसन्मूर्त्तेः प्रतिष्ठां व्यधुः ॥१३४॥
अन्येऽन्यासां चक्रुर्मूर्त्तीनां स्थापनां च शिष्यवराः ।
नानुबभूवे तस्मिन् समये केनापि दुःखलवः ॥ १३५ ॥
कृतकृत्यस्य कर्मस्यानन्दलाभे किमुच्यते ।
किन्तु चित्ते तदान्येषां नामादानन्दकन्दली ॥ १३५ ॥
न केवलं जनैः कर्मो धन्यो मेनोऽतिहर्षितैः ।
कर्मेणापि किलात्मानं धन्यं मेनेऽतिहर्षितः ॥ १३७ ॥
तदा जज्ञे त्रयाणां हि समं वर्द्धापनक्षणः ।
मूर्त्तेर्गुरोश्च कर्मस्य स्वर्णपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १३८ ॥
सर्वावयवाभरणैर्दृष्टं कर्मेण सङ्घलोकैश्च ।
विहितं न्युञ्छनकृत्यैरानन्दोद्भूतबहुलरोमाञ्चैः ॥१३९॥
दन्त्यं वा तालव्यं चैत्येऽस्थापयदथार्हतः कलसम् ।
तालव्यमेव चात्मनि कर्मो दुष्कर्ममर्मज्ञः ॥ १४० ॥
सौवर्णेऽत्र च कलशे दण्डं संस्थापयाम्बभूवासौ ।
शिवनगरशुद्धदण्डं मणिगणखचितं ध्वजोपेतम् ॥ १४१ ॥
सङ्घाधिपत्यतिलकं भाले कर्मस्य विजयतिलकमिव ।
विद्यामण्डनसूरिभिरकारि वंश्योदयायैव ॥ १४२ ॥
इन्द्रमालपरिधानादिकं किञ्चिद्व्ययास्पदम् ।
तत्रासीद्यत्र कर्मेणाराधितं दानशालिना ॥ १४३ ॥
नीराजनरथचमरछत्रोल्लोचासनानि कलशाश्च ।
तेन ग्रामारमोघर्थाश्चैत्योपयोगिनो न्यस्ताः ॥ १४४ ॥
उदयादारभ्याह्नोऽस्तं यावत्कर्मसाधुसदनेऽभूत् ।

---

१ शत्रुञ्जये ।

अनिवारितावदत्तिः प्रतिदिनमखिलार्थिनां प्रीत्या ॥१४५॥
पदे पदे याचितारोऽयाचितारश्च सत्कृताः ।
द्रव्यकोटीरलभत तदैकैकोऽपि मार्गणः ॥ १४६ ॥
गजरथतुरगाणां स्वर्णभूषान्विताना-
मददत स शतानि प्रीतिमान् याचकेभ्यः ।
धनवसनसुवर्णश्वेतसद्रत्नभूषा-
दिकमपरमनिन्द्यं लक्षकोटिप्रमं च ॥ १४७ ॥
विरराम[1]ाऽगर्ज्जत्सन् दानासाराच्च कर्मपर्जन्यः ।
याचकचातकलोको वितृष्ण आजीवितं जातः ॥ १४८ ॥
कर्मार्पितधनजातं कियदादातुं वनीपकाः सेकुः ।
बहुरूपिणीं च विद्यां विधिं ययाचुस्तदा केऽपि ॥१४९॥
कं विहाय स्थितः कल्पः कर्मदानविनिर्जितः ।
बलिः स्वराविपर्यासमभजत् ह्रीतमानसः ॥ १५० ॥
कर्मस्य काऽपि विकृतिर्न वचननयनाननेषु सञ्जाता ।
याचककोटीक्षणतः प्रसन्नतैतेषु वृद्धिमगात् ॥ १५१ ॥
यद्वाच्यं वक्तृभिस्तद्हृदि विमलतरेऽसौ विशेषेण जानन्
तेभ्यः शुश्राव सम्यक् तृषित इव तद्दूषणादत्तचित्तः ।
तानिच्छातीतदानैः प्रियतमवचनैर्हृष्टचित्तान्विधाय
प्रैषीद्गम्भीरिमाऽहो ! जगति च वचनातीतमौदार्यमस्य॥१५२
वैदग्ध्येन निजेन पण्डितजनेऽवज्ञां परां नाटय-
न्त्येके स्वं त्वपलापयन्ति च भृशं शाठ्यं समातन्वते ।
किन्तु श्रीकरमोऽर्थिसात्कृतरमोऽयं मार्गणाक्षोहिणी-

---

१ विरराम दानसमरे न कर्मशूरो दरिद्रवाटीभ्यः । ता अनिहत्य स्वशरैरविमोच्य च तद्गृहीतवन्द्यालीः ॥४७॥ इति पाठान्तरे ।

२ 'अपरे' अध्याहारः ।

नामन्तर्विलसत्सदा विजयते दानास्त्रविभ्राजितः ॥१५३॥
कुलाचारं क्षुद्रस्त्यजति हि कदाचिद्धनमदा-
दितीवार्थी याच्ञाव्रतममुचादिभ्याद् द्राविणवान्।
न मुञ्चत्यात्मीयं व्रतमिह महात्मा कथमपी-
त्यसौ कर्मो दानान्न खलु विरराम क्षणमपि ॥ १५४ ॥
अन्योऽन्यसन्दर्शनजातरागयोर्देहीति वाक्यं ब्रुवतोर्विशङ्कितम् ।
जज्ञे जनैर्दायकयाचकाङ्क्षिनोस्तदान्तरं नायतहस्तयोर्मुहुः ॥१५५॥
स कोऽपि याचको नाभूद्येन कर्मो न याचितः ।
स पुनर्याचको नाभूद्येन कर्मस्तु याचितः ॥ १५६ ॥
स्वर्णोपवीतमुद्राङ्गदकुण्डलकङ्कणादिकाभरणैः ।
वस्त्रैश्च सूत्रधारानतूतुषत्सोऽपि कर्मकृतः ॥ १५७ ॥
धनवसनाशनभूषणयानप्रियवचनभक्तिबहुमानैः ।
साधर्मिकगणमसकृत्समारराधैष विनयनतः ॥ १५८ ॥
योग्यान्नपानवसनोपकरणभैषज्यपुस्तकादीनाम् ।
दानैर्मुमुक्षुवर्गं समपूपुजदेष नित्यमपि भक्तः ॥ १५९ ॥
आबालात्पशुपालं यावत्सर्वो जनोऽन्नवसनाद्यैः ।
सम्भावितो हि नामग्राहं कर्मेण विशदेन ॥ १६० ॥
इत्थं सर्वजनान् विशालहृदयः सन्तोष्य कर्माभिधः
सङ्घेशो विससर्ज सज्जनगुणैः सर्वैः सदा भ्राजितः ।
स्वे स्वे निर्वृति सङ्गमाय पुनरप्यामन्त्र्य तस्थौ स्वयं
कर्तुं कार्यमिहावशिष्टमनघं घस्रान् कियन्तोऽपि च ॥१६१॥
एकैकस्य जनस्य दर्शनमभून्मुद्राशतेनैकशः
तत्रापि क्षणमेकमेव भगवन्मूर्तेः सुभद्राचले ।
श्रीकर्मेण धनं विनापि जनताकोटेर्भृशं कारिता
यात्रा तत्र सुवर्णशैलमपरं दत्त्वात्मना भूभुजे ॥ १६२ ॥

शेषोदितान् कर्ममहेभ्यपुण्यराशीन् लिखत्यर्जुनकः खपत्रे ।
समस्तरत्नाकरजै रसैश्चेत्तथाप्यनन्ता लिखितावशिष्टाः ॥१६३॥

आज्ञां श्रीविनयादिमण्डनगुरोर्धृत्वोत्तमाङ्गे शुभां
तच्छिष्यस्तु विवेकधीरविबुधो नित्यं विधेयोऽकरोत् ।
श्रीकर्माभिधसङ्घनायककृतोद्धारप्रशस्तिं बुधै-
र्वाच्यैषा रभसोत्थदोषकणिका उत्सार्य निर्मत्सरैः ॥१६४॥

एतत्प्रबन्धनिर्माणे यन्मया पुण्यमर्जितम् ।
सम्यग्रत्नत्रयावाप्तिस्तेनैवास्तु भवे भवे ॥ १६५ ॥

यावच्छ्रीविमलाचलः सुरनरश्रेणीभिरभ्यर्चितः
क्षोणीमण्डलमण्डनं विजयतेऽभीष्टार्थसंसाधकः ।
तावच्छ्रीकरमाह्वसङ्घपकृतोद्धारप्रशस्तिः परा
सद्वर्णा जयतादियं बुधजनैः सा वाच्यमानानिशम् ॥१६६॥

वैशाखासितसप्तम्यां सोमवारे शुभेऽहनि ।
इष्टार्थसाधकाह्वोऽयं प्रबन्धो रचितः शुभः ॥ १६७ ॥

प्रतिं च प्रथमादर्शादलिखद्दशमीगुरौ ।
निदेशात्पाठकेन्द्राणां बुधः सौभाग्यमण्डनः ॥ १६८ ॥

अनुष्टुभां त्रिशत्येकचत्वारिंशत्समन्विता ।
सप्तविंशतिवर्णाढ्या ग्रन्थे हीष्टार्थसाधके ॥ १६९ ॥

इति श्रीइष्टार्थसाधकनाम्नि श्रीशत्रुञ्जयोद्धारप्रबन्धे
पं० विवेकधीरगणीकृते श्रीशत्रुञ्जयोद्धार-
व्यावर्णनो नाम द्वितीय उल्लासः ॥

॥ इति श्रीशत्रुञ्जयोद्धारः समाप्तः ॥

---

१ संवत् १५८७ । २ संवत् १८५७ ।

राजावली-कोष्टकम् ।
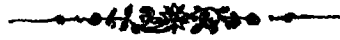
संवत् ८०२ वर्षे वैशाखसुदि ३ रवौ रोहिणी-तात्कालिकमृगशिरनक्षत्रे, वृषस्थे चन्द्रे, साध्ये योगे, गरकरणे, सिंहलग्ने वहमाने; मध्याह्नसमये अणहिल्लपुरस्य शिलानिवेशः । तस्यायुर्वृद्धः । वर्ष-२५००, मास ७, दिन ९, घटी ४४ ॥ इति ॥

अथ चापोत्कटवंशानुक्रमः—

१ संवत् ८०२ वर्षे वनराजराज्याभिषेकः पत्तने । राज्यं ६० वर्ष यावत् ।

२ सं० ८६२ व० योगराजराज्या० रा० ३५ व० ।

३ सं० ८९७ व० क्षेमराजराज्या० रा० २५ व० ।

४ सं० ९२२ व० भूयडराज्या० रा० २९ व० ।

५ सं० ९५१ व० वैरिसिंहराज्या० रा० २५ व० ।

६ सं० ९७६ व० रत्नादित्यराज्या० रा० १५ व० ।

७ सं० ९९१ व० सामन्तसिंहराज्या० रा० ७ व० ।

एवं १९६ वर्षमध्ये चापोत्कटवंशे ७ राजानः । ततश्चौलुक्यवंशे लोकप्रसिद्धे सोलंकीवंशे राज्यं गतं तदनुक्रमेण नृपावली—

१ सं० ९९८ व० वृद्धमूलराजराज्या० रा० ५५ व० ।

२ सं० १०५३ व० चामुण्डराजराज्या० रा० १३ व० ।

३ सं० १०६६ व० वल्लभराज (जगज्झंपन इत्यपरनामा) राज्या० रा० ६ मासं ।

४ सं० १०६६ व० दुर्लभराज (वल्लभराजावरजः) राज्या० रा० ११ वर्ष-६ मासं यावत् ।

५ सं० १०७८ व० भीमराजराज्या० रा० ४२ व० । अयं

दुर्ल्लभराज्ञो भ्रातृजः । धाराधीशभोजनृपजेता । मयणसरः (कारकः) । अस्मिन् राज्ये विमलो दण्डाधिपो जातः ।

६ सं० ११२० व० कर्ण्णराज्या० रा० ३० व० । मीणलदेवी भार्या ।

७ सं० ११५० व० जयसिंहराज्या० रा० ४९ व० ।

८ सं० ११९९ व० कुमारपालराज्या० रा० ३१ व० । अस्मिन् राज्ये हेमसूरिर्जातः । तेषां सं० ११४५ कार्तिक शुक्ल १५ रात्रौ जन्म, ११५० व्रतं, ११६६ सूरिपदम् ।

९ सं० १२३० व० अजयपालराज्या० रा० ३० व० । अजयपालसूतौ लघुमूल–भीमौ । अत्र बहवो विसंवादा दृश्यन्ते । अस्माभिस्तु कीर्तिकौमुद्यनुसारेण लिखितम् ।

१० सं० १२६६ (?) व० लघुमूलराज्या० रा० ८ व० ।

११ सं १२७४ व० लघुभीमराज्या० रा०.........।

एवं २७६ वर्षमध्ये ११ चौलुक्यराजानः ॥

अथ वाघेलावंशे–आनजी । मूलजी । सीहरणु । वस्तुपालादिभिः स्थापितो वीरधवलो* नृपो जातः ।

१ सं० १२८२ व० वीरधवलराज्या० रा० १२ वर्ष ६ मासं

२ सं० १२९४ व० वीसलदेवराज्या० रा० ३४ वर्ष, ६ मास १० दिनं यावत् । तत्समये जगडूसा जातः ।

३ सं० १३२८ व० अर्जुनदेवराज्या० रा० २ व० ।

४ सं० १३३० व० सारंगदेवराज्या० रा० २१ व० ॥

६ सं० १३५१ व० ग्रथिलकर्णराज्या० रा० ६ वर्ष १० मास १५ दिनं यावत् ।

---

* चौलुक्यवंश एव शाखान्तरोद्गतो धवलसुतोऽर्णोराजः १, तत्सुतो लावण्यप्रसादः २, तत्सुतो वीरधवलः ३ ।

एवं, अणहिल्लपुरशिलानिवेशादनुगतवर्ष १३४९ मास १, दिन २५। एवं संख्या ५३७ वर्ष, ८ मास, २९ दिनमध्ये २४ छत्रपतयः। ततो ग्रथिलकर्णो भयत्रस्तः स्थितः।

एवं सं० १३५१ वर्षे मा. १ दिन (१) तत ऊर्द्धं स्वप्रजावती पद्मिनीधृतिरुष्टनागरमं० माधवप्रयोगात् गूर्जरात्रायां यवनप्रवृत्तिः॥

---:o:---

गूर्जरात्रायां उमराः, अलूखान, तदा जालहुरे कान्हडदे चहुआणः। खानखाना। दफरखान। ततारखान।

---0---

अथ दिल्ल्यां पादशाहयः।

१ सं० १०४५ व० सुलतान महिमदराज्यं व० ६२।

२ सं० ११०७ व० साजरराज्यं व० ७६।

३ सं० ११८३ व० मोजदीनराज्यं व० ३९।

४ सं० १२२२ व० कुतबदीनवृद्धराज्यं व० १८।

५ सं० १२४० व व० सहाबदीनराज्यं व० २६।

तेन विंशतिवारबद्धरुद्धसहाबदीनसुरत्राणमोक्ता पृथ्वीराजो बद्धः।

६ सं० १२६६ व० रुकमदीनराज्यं व० १

७ सं० १२६७ वर्षे० बीबी जूआं राज्यं व० ३।

८ सं १२७० व० मोजदीनराज्यं व० २८।

मोजदीनराज्ये मंत्रि पुनडेन प्रथमयात्रा सं० १२७३ वर्षे विहिता। द्वितीया सं० १२८६ वर्षे विहिता। तत्र मिलितस्य वस्तुपालस्य मम्माणिदल प्रार्थना।

९ सं० १२९८ व० अलावदीनराज्यं व० २१।

१० सं० १३१९ व० नसरतवृद्धराज्यं व० १३।

११ सं० १३३२ व० ग्यासदीनवृद्धराज्यं व० १२ मास ६ ।
१२ सं० १३४४ व० मोजदीनराज्यं व० २ ।
१३ सं० १३४६ व० समसदीनराज्यं व० १ ।
१४ सं० १३४७ व० जलालदीनराज्यं व० ७ ।
१५ सं० १३५४ व० अलावदीनराज्यं व० १९ मास ६ ।

सं० १३५४ वर्षे अलावदीनः । चतुरशीतिछत्रपतिजेता । हमीरदेवो जितः । रणथंभोरदुर्गो गृहीतः । गूर्जरात्रायां उलूखानः प्रहितः । अलावदीनप्रभृतिभिः षड्भिः सुरत्राणैर्दिल्ली गूर्जरात्रा च भुक्ता ॥

१६ सं० १३७३ व० कुतुबदीनराज्यं व० ४ ।
१७ सं० १३७७ व० सहाबदीनराज्यं व० १ ।
१८ सं० १३७८ व० खसरबदीनराज्यं मास ६ ।
१९ सं० १३७८ व० ग्यासदीनराज्यं व० ४ ।
२० सं० १३८२ व० महिमुंदराज्यं व० २५ ।
२१ सं० १४०७ व० पीरोजराज्यं व० ३८ ।
२२ सं० १४४५ व० बूबकराज्यं व० १ ।
२३ सं० १४४६ व० तुगलकराज्यं व० १ ।
२४ सं० १४४७ व० महिमुंद राज्यं व० १ । देशे देशे यवनाः ।

अथ गूर्जरात्रायां सुरत्राणाः ।

१ सं० १४३० व० मुज्जफ्फर राज्यं व० २४ । मलमले जातिसदूमलिकः । उज्जहेल । मुज्जफ्फर । इति नामत्रयेण विख्यातः । पूर्वोपकारिपीरोजशाहिना गूर्जरात्राराज्यं दत्तं ।
२ सं० १४१४ व० अहिमदराज्यं व० ३२ । संवत् १४६८ वर्षे वैशाखवदि ७ रवौ पुष्ये अहिमदावादस्थापना ।